मेरी जीवन प्रपंच कथा

●

मुनि जिनविजय लिखित, 'जीवन कथा' का उत्तर भाग

स्थानकवासी संप्रदाय का जीवनानुभव

●

मुनि जिनविजयजी द्वारा स्थापित
सर्वोदय साधना आश्रम द्वारा प्रकाशित
चन्देरिया, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

वि. सं. २०३२

१९७६ ई. सन्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरी जीवन प्रपंच कथा

●

मुनि जिनविजय लिखित, 'जीवन कथा' का उत्तर भाग

स्थानकवासी संप्रदाय का जीवनानुभव

●

मुनि जिनविजयजी द्वारा स्थापित
सर्वोदय साधना आश्रम द्वारा प्रकाशित
चन्देरिया, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

वि. सं. २०३२ १९७६ ई. सन्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
केशरपुरी गोस्वामी
मुख्य प्रबंधक :
सर्वोदय साधना आश्रम
चन्देरिया (चित्तौड़गढ़)

प्रथमावृत्ति :
२५० प्रति

मुल्य :
२ रूपये ५० पैसे

मुद्रक :
सुन्दरलाल पटवारी
चित्रकूट प्रिंटिंग प्रेस
चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)
फरवरी १९७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किंचित प्रास्ताविक

पाठक के हाथ में जो पन्ने हैं, इनमें मेरी पूर्व प्रकाशित जीवन कथा के कुछ आगे के संस्मरण आलेखित हैं। इनके आलेखन के विषय में इन्हीं पृष्ठों में, प्रारम्भ में थोड़ा सा उल्लेख किया गया है। उस उल्लेखानुसार पिछले दो तीन महिनों में जो कुछ संस्मरण मैं लिख सका उनको इस रुप में मैंने प्रकाशित करना उचित समझा है।

जैसा कि इन संस्मरणों के पढ़ने से ज्ञात होगा कि मेरे ये संस्मरण उस जीवन के साथ सम्बन्ध रखते हैं, जिनको मैंने "स्थानकवासी सम्प्रदाय का जीवनानुभव" ऐसा नाम दिया है। विक्रम सं० १९५९ के आश्विन मास में दिग्ठाण नामक मालवे के एक गांव में मैंने स्थानक वासी नाम से परिचित जैन सम्प्रदाय के साधु का वेष धारण किया और विक्रम सं० १९६५ के आश्विन मास में ही मालवे के उज्जैन नामक नगर में उस वेष का परित्याग किया। इस प्रकार प्रायः ६ वर्ष, मैं इस वेष में रहा। इन छः वर्षों में मैंने अपने जीवन में क्या क्या अनुभव प्राप्त किये, उनका दिग्दर्शन इन संस्मरणों में आलेखित हुआ है।

मैं नहीं मानता कि मेरे ये अनुभव किसी अन्य व्यक्ति के लिए उपयोगी होंगे। मैंने केवल अपने ही रुग्ण मन को बहलाने के लिए ये संस्मरण लिख डालने का निरर्थक प्रयास किया है। मेरे जीवन के इन क्षुद्र अनुभवों में किसी को कुछ ग्रहण करने योग्य कोई बात नहीं है। मेरे जीवन के प्रपंच का यह एक वर्णनात्मक भाग है। इससे पूर्व प्रकाशित कथा में जीवन के बाल्य काल के अनुभव आलेखित हुए हैं। उसके बाद मैंने जीवन के दूसरे चरण में प्रवेश किया। इस चरण में मुझे आभास होने लगा कि मेरा यह जीवन एक प्रपंचमय है।

प्रपंच का अर्थ सामान्य रुप से सब कोई समझते हैं। उसके गंभीर अर्थ की कोई चर्चा मैं यहां नहीं करता। मैं धीरे धीरे समझने लगा कि मनुष्य का सारा जीवन प्रपंचमय है, इसलिए पूर्व प्रकाशित पुस्तिका के अनुरुप इसको केवल "जीवन कथा" नाम न देकर "जीवन प्रपंच कथा" नाम रखना मुझे उचित लगा।

इस नाम का स्फुरण मुझे महाकवि सिद्धर्षि की बनाई हुई, "उपमितिभव प्रपंचाकथा" के नाम से हुआ। महाकवि सिद्धर्षि ने संसार के जीवों के भव अर्थात जीवन के प्रपंचात्मक आन्तर-बाह्य भावों का स्वरुप चित्रित करने के लिए उस कथा का निर्माण किया। वह जैन साहित्य की एक अद्भुत रचना है। उसके पढ़ने से विचारशील मनुष्य को जीवों के शुभा-शुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मों के परिणामों और उनके सुख दुःखादि फलों का गभीर ज्ञान प्राप्त होता है। मैं भी अपने इस जीवन प्रपंच में अनेक शुभ-अशुभ आदि कर्म करता रहा हूँ और उनके सुख दुखादि फलों का भी अनुभव करता रहा हूँ इसलिए मैंने अपनी इस कथा को जीवन का प्रपंच बतलाने वाली कथा के नाम से अंकित किया है। इसका अधिक विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है ... .

● ● ●

सभव है कि बहुत से स्थानकवासी भाइयों को मेरे ये अनुभव रुचिकर नहीं मालूम दें. क्योंकि मैंने जो अनुभव आलेखित किये हैं वे किन्हीं को कुछ आक्षेपात्मक लग सकते हैं। पर इनके लिखने में मेरा वैसा कोई उद्देश्य नहीं रहा है। मैंने तो केवल मेरे मन पर अनुभवों ने जो कुछ छाप डाली उन्हीं का शब्द चित्र मात्र आलेखित किया है। मैं उस वेष में जितने दिन रहा, घूमा-फिरा, वेष के अनुरुप आचार धर्म का यथा योग्य पूरी तरह पालन करता रहा। प्रारम्भ में तो मेरी उस पर दृढ़ श्रद्धा रही। मैंने जब दीक्षा ली, तब मैं कोई ठीक पढ़ा लिखा भी नहीं था और न मुझ में वैसा कोई विरक्त भाव ही जागृत हुआ था।

अबोध मन को संसर्ग विशेष के कारण उस वेष को धारण करने की इच्छा हो आयी। पीछे से थोड़ा थोड़ा ज्ञान प्राप्त होने पर साधु जीवन का कुछ महत्व समझ में आने लगा। इस जीवन का उद्देश्य क्या है और उसे किस तरह सिद्ध करना चाहिये? इसका कोई मार्ग दर्शन कराने वाला नहीं मिला। बाल्य जीवन के कुछ पूर्वानुभव मन में जो दबे हुए थे, वे कभी कभी प्रसंग पाकर अस्पष्ट रुप से जाग भी उठते थे। कभी माता की स्मृति आ जाती कभी अपने पूर्वजों की स्मृति आ जाती, कभी दिवंगत गुरु र्यात्तिवर्य देवी हंसजी की भी स्मृति हो आती थी क्यों मैंने खाखी बाबा का वेष धारण कर लिया? क्यों उसे छोड़ दिया इत्यादि। कई संस्मरण मन में कभी जग जाते और वे चालू जीवन के अनुभवों के साथ टकराते। इसके परिणाम स्वरुप मेरा मन विचलित होता गया तथा साथ में ज्यों-ज्यों मुझे कुछ विशिष्ट विद्या अध्ययन करने की लालसा उत्पन्न होती गई और उसका वर्तमान जीवन मार्ग में चलते रहने से संतुष्ट होना असंभव दिखाई दिया, तब मैंने जीवन का कोई दूसरा रास्ता खोजना निश्चित किया। उसके परिणाम स्वरुप मुझे उस वेश का परित्याग करना पड़ा।

मैं जिस समुदाय में था, वह छोटा सा ही समुदाय था। किन्हीं अन्य समुदायों के साथ मेरा कोई विशेष परिचय नहीं हुआ। अन्य समुदायों में साधु जीवन की कैसी स्थिती थी, उसका मुझे ठीक ज्ञान नहीं था। स्थानकवासी साधु जीवन के मेरे ये अल्प स्वल्प संस्मरण आज से कोई ६५-७० वर्ष से पहले के है, उस समय के और वर्तमान समय के साधु जीवन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत बड़ा आकाश पाताल जितना अन्तर दिखाई देता है । अब तो उस साधु सम्प्रदाय में भी विद्या अध्ययन का बहुत प्रचार हुआ है । अनेक स्थानकवासी साधु संस्कृत, प्राकृत के अच्छे ज्ञाता और विद्वान है । उनमें अनेक नवीन पद्धति के ग्रंथ आदि लिखने वाले भी अच्छे लेखक साधु है । अनेक प्रभावशाली प्रवक्ता भी है । और समयानुसार विविध प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक और साहित्यिक प्रवृतियों में भी विशिष्ट भाग लेने वाले है । इनमे कई साधुओं के आचार और विचार में भी बहुत परिवर्तन होता हुआ दिखाई दे रहा है ।

वर्तमान देशकाल के अनुरूप कई परिवर्तन ऐसे भी लगते है जिनका शायद जैन साधु के वास्तविक आचार के साथ कोई सम्बन्ध नहा रहा है ।

यहां तक कि हाल ही में एक बहुत बड़े प्रतिष्ठित श्रमण साधुवर्य ने ओघा और मुंहपत्ति स्वरुप साधु वेष के विशिष्ट चिन्ह को धारण किये हुए, आकाश यान द्वारा पृथ्वी की प्रदक्षिणा भी की । ऐसा सुना गया है कि उन्होंने अमेरिका में विश्व के राष्ट्रसंघ जैसी महत्ती सभा में भी उपस्थित होकर भगवान महावीर के सर्वोत्कृष्ट त्यागमय जीवन का परिचय कराया तथा स्वयं को महावीर के अनुयायी साधु श्रेष्ठ श्रमण धर्म के कठोर आचारपालक के रूप में प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कराया ।

साधु जीवन की ऐसी नूतन चर्या को सुनकर मेरे जैसे अत्यल्प मति वाले मनुष्य के मन में सहसा संस्कृत भाषा की उस प्रसिद्ध उक्ति का स्मरण हो आया जो कहती है कि –

किमाश्चर्यं अतः परम् ?

परम निर्ग्रंथ श्रमण भगवन महावीर प्रबोधित निर्ग्रंथनामधारी श्रमण कहलाने वाले साधु के साधु जीवन में इससे बढ़कर और क्या परिवर्तन हो सकता है ?

इससे मैं मानता हूं कि मेरे जीवन के अनुभव में आने वाले उन अविकसित क्षुद्र कालमय दशक के बाद बीत जाने वाले छः दशाब्दों में देश के समग्र राष्ट्र – जीवन में आचार और विचारों का जो विलक्षण परिवर्तन हुआ है, उसी के अनुरूप जैन साधुओं के आचार और विचारों में भी विलक्षण परिवर्तन होने जा रहा है । अब अनेक बड़े–बड़े साधु बड़ी–बड़ी सभाओ का आयोजन करवाते हैं । ऐसी बड़ी सभाओं में वे स्वयं जाते हैं । अनेक पत्र-पत्रिकाएं तथा पुस्तकें आदि छपवाते हैं और उनका विमोचन करवाने के लिए प्रसिद्ध राजकीय नेताओं तथा मिनिस्टरों आदि को बुलवाते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजकीय एवं सामाजिक कार्य करने वाले अनेक प्रकार के लोगों के साथ, समान आसन पर बैठकर, फोटू आदि खीचवाते हैं और उन्हें पत्रों में प्रकाशित करवाते हैं।

रेडियो स्टेशनो में जाकर वार्तालाप, परिभाषण आदि का आयोजन करवा कर नका आकाशवाणी द्वारा प्रसारण कार्य आदि करवाते हैं : मेरे उस संकीर्ण जीवन की दृष्टि से ये सब बातें मुझे किसी अन्य देश काल की घटनाओं जैसी आभाषित होती है। जैन साधुओं के जीवन में ऐसा परिवर्तन कभी हो सकेगा, इसकी मुझे उस समय कल्पना भी नहीं हो सकती थी।

जिस प्रकार मैंने उस साधु जीवन में मैले–कुचैले वस्त्र पहने थे वैसे मैले–कुचैले वस्त्र अब ये साधु नहीं पहनते हैं। इनके वस्त्र, जिनको जैन आगम में घट्टा–मट्टा टिप्पट्टा–पांडुरपट्ट–पावरणा जैसे शब्दों से आलेखित किया है, वैसे शुभ्र धौत वस्त्र ये साधु पहनते हैं। मूँह पत्ति भी वैसी उज्जवल और शुभ्र रखते हैं। जिसको देखकर ऐसा आभास हो जाता है कि मानों उसको इस्त्री की गई हो। तेरापंथी समुदाय वाले साधुओं में तो यह बात विशेष रूप से दृष्टि गोचर होती है। लम्बी डंडी वाला रजोहरण अब रजयानो धूल का हरण करने वाला नहीं है परन्तु एक शोभा का अलंकरण सा बन गया है और तेरा पंथी समुदाय वाले साधुओ के पास तो रजोहरग को प्लास्टिक के आवरग से ढ़का हुआ भी देखा गया है। मैं इन बातों को साधुओं में जो विचार परिवर्तन हो रहा है। उसी के परिणाम स्वरूप मानता हूँ।

इन परिवर्तनों के साथ मैं जब अपने जीवन के आलेखित क्षुद्र संस्मरणों का मिलान करता हूँ तो कभी कभी मुझे ऐसा भास होने लगता है कि क्या मेरे ये संस्मरण वास्तविक अवस्था के द्योतक हैं या स्वप्नावस्था के ?

मुझे उस जीवन की जब मोटी-मोटी बातें याद आती हैं तो मुझे विस्मय सा हो आता है कि किस तरह मैंने उस जीवन की चर्या का पालन किया ?

मुझे याद आरहा है कि जब से मैंने उस पन्द्रह वर्ष की नाबालिग अवस्था में वह दीक्षा ली, तबसे लेकर प्रायः इक्कीस वर्ष की बालिग कहलाने वाले अवस्था तक जब मैं पहुँचा, तब मैंने उस वेष का परित्याग कर दिया। उस वेष में रहते हुए, मैंने निम्न प्रकार की चर्या का अनुसरण किया। मैंने कभी पानी से शरीरका प्रक्षालन नहीं किया। जो वस्त्र मिला, उसे पहनते–पहनते फटने तक कभी पानी से नहीं धोया। शरीर को ढ़कने के लिए केवल तीन चद्दर और दो–तीन चोलपट्टे रखे। कोई गर्म कम्बल कभी नहीं लिया। बिछाने के लिए छः फुट लम्बा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ फुट चौड़ा खद्दर के मौटे से कपड़े का टुकड़ा काम में लेता था । पढ़ने के लिए केवल हाथ की लिखी हुई पोथियां थी। छपी हुई कोई पुस्तक पास नहीं रखी थी। कभी किसी को अपने हाथ से पोस्टकार्ड या पत्र नहीं लिखा । पानी प्रायः धोवन वाला लिया जाता था कभी उसके न मिलने पर गरम पानी लिया जाता था । आहार के आधाकर्मिक आदि जो अनेक दोष हैं उनको टालकर ही वह ग्रहण किया जाता था । चातुर्मास के दिनों के सिवाय सदैव जमीन पर ही सोना होता था । सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक अपने स्थान से रात्रि को बाहर निकलना नहीं होता था । विहार में भी सूर्यास्त के हो जाने पर जहाँ कहीं योग्य स्थान मिल जाता वहां ही रात्रि व्यतीत करनी होती थी । विहार में चाहे जितनी लम्बी सफर करनी पड़ती तो भी २(दो)कोस से अधिक दूर आहार पानी नहीं ले जाते थे। अपने वस्त्र पात्र आदि सभी उपकरण स्वय ही उठाकर चलते थे । रास्ते में चलते हुए किसी से बात चीत करनी नहीं होती थी । चलते हुए अगर भूल से किसी हरी वनस्पती पर पैर पड़ जाता तो उसके प्रायश्चित स्वरूप एक एक उपवास का दण्ड होता था। प्रति छः मास मस्तक के केशों का लोच करना अनिवार्य होता था। चातुर्मास के सिवा किसी भी स्थान में एक मास से अधिक रहना नहीं होता था। दैनिक चर्या के खयाल से सदैव आहार पानी से निपटना, शौचादि के लिए गाव बाहर हो आना और बाकी समय में कुछ नया सीखना और सीखे हुए का पुनरावर्तन करना यही मुख्य कार्य रहता था । मैं अपने हाथ से विधि पूर्वक बनाई गई स्याही से कुछ सूत्र पाठ तथा थोकड़ों आदि की लिखाई करता रहता था । बाद के वर्षों में मराठी भाषा का अध्ययन करना शुरू किया था । हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं थी तथापि मारुवे में रहने के कारण टूटी-फूटी हिंदी जानता था। उससे अधिक मेरा कोई खास भाषा ज्ञान नहीं था । न मैंने कभी कोई अखबार या पत्र पत्रिकाएँ पढ़ी । साधुओं के सहवास में समुदाय से सम्बन्धित कोई बात-चीत हो जाया करती । इससे अधिक चिंतन का कोई खास क्षेत्र नहीं था । जैन आगम तथा थोकड़े जैसे प्रकरणों का स्वाध्याय करते हुए उनमें उल्लिखित क्षेत्रादि का विचार हुआ करता । स्वर्ग नरक आदि परलोक की बातों का भी कुछ ऊहापोह हुआ करता । जीव-अजीव आदि पदार्थों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त होता रहता था । इनमें से कुछ बातों के विशेष ज्ञान की जिज्ञासा मुझ में उत्पन्न हुआ करती, परन्तु उसका समाधान प्राप्त करने का उस समुदाय में कोई साधन नहीं था ।

इस प्रकार की मेरे उस साधु जीवन की चर्या का क्षेत्र बहुत सीमित था । मैं जितने दिन तक उस वेष में रहा, उस चर्या का यथा योग्य पालन करता रहा परन्तु मैं अपनी विद्या पढ़ने की तीव्र अभिरुचि के कारण मुझे उस परिचर्या का परित्याग करना पड़ा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर जो मैंने वर्तमान में कितनेएक साधुओं के विचारों और आचारों में दिखाई देने वाले परिवर्तन को लक्ष्य कर कुछ बातें कही हैं, उनका उद्देश्य केवल वर्तमान स्थिति का चित्रण करना मात्र ही है। मेरा इसमें कोई आक्षेपात्मक अथवा निंदात्मक भाव बिल्कुल नहीं है। क्योंकि उस जीवन के बाद उक्त सम्प्रदाय के साथ मेरा न किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध हो रहा और न मेरे मन में उस चर्या का कोई आकर्षण या महत्त्व ही रहा। मैं तो उसके बाद सदा के लिए अन्य ही जीवन में परिभ्रमण करता रहा।

●

मैं तो यों अत्यन्त परिवर्तन प्रिय मनुष्य हूँ। मेरे मन का गठन तो विशिष्ट प्रकार के परिवर्तन शील पुद्गलों से ही हुआ है ऐसा मैं समझ रहा हूँ। जब से मैंने कुछ होश सम्भाला तब से मैं अपने जीवन मार्ग में सतत् परिवर्तन करता रहा हूँ। इस परिवर्तन में मुझे किसी प्रकार का पूर्वाग्रह बाधक नहीं हुआ। जब कभी मेरे विचारों में परिवर्तन का कोई विशिष्ट कारण निमित्त बना तो मैं तुरन्त ही उसके अनुरूप परिवर्तन करने को तत्पर होता रहा हूँ। अपने अन्तर को आंदोलित करने वाले प्रबल विचारों के परिणाम स्वरूप परिवर्तन करने में मैंने किसी स्थान, किसी समुदाय, किसी पक्ष या किसी कार्य विशेष का कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया ऐसे ही परिवर्तन-शील स्वभाव के कारण मैंने कई प्रिय स्थान छोड़ दिये और कई सम्प्रदाय विशेषों के बन्धन तोड़ दिये। वैसे ही विशिष्ट संस्थाओं का सम्मानास्पद सम्बन्ध भी मुझे छोड़ना पड़ा। ऐसे कई प्रकार के परिवर्तन करते रहने में मुझे किसी प्रकार की हिचकिचाहट अनुभव नहीं हुई। मैं परिवर्तन-शील प्रकृति को जीवन की प्रगति का विशिष्ट तत्व मानता हूँ। इसलिए जो कोई भी मनुष्य अपने अन्तर के विचरानुसार परिवर्तन करता है उसके प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का अनादर भाव उत्पन्न नहीं होता। अतः जो कोई साधु मुनि अपने अन्तर को लक्ष्य कर स्वीकृत आचार विचारों में किसी विशिष्ट उद्देश्य से परिवर्तन करता है, तो मैं उसको आदर की दृष्टि से ही देखता रहता हूँ। फिर मेरी यह भी मान्यता रही है कि जब तक हम किसी सम्प्रदाय विशेष का भेष धारण किये हुए हैं तब तक हमारा आचार भी उसी के अनुरुप होना चाहिये। विचार परिवर्तन के साथ आचार में भी परिवर्तन किया जाता है तो तदनुसार वेष का भी परिवर्तन करना चाहिये अन्यथा वह एक प्रकार का दांभिक जीवन होगा।

व्यवहार में भी वेष के अनुरुप कर्म अर्थात आचार की संगतता सम्बन्धित है। पुलिस के कपड़े पहनने वाले मनुष्य से लोग यही अपेक्षा रखते हैं कि उसका व्यवहार उसके स्वीकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रक्षा कर्म के अनुरूप होना चाहिये । यदि पुलिस के कपड़े पहनने वाला मनुष्य शाक सब्जी बेचने का काम करता दिखाई दे तो उसे देख कर लोगों के दिल में कैसे भाव उत्पन्न हों ? इसी तरह साधु वेष धारण किये हुए मनुष्य का व्यवहार भी उसके वेषानुरूप न हो तो वह लोगो को मायावी अथवा भ्रम में डालने वाला समझा जायेगा ।

जीवन की संगतता का सम्बन्ध वेष से नहीं है पर आचार से है। आचार जिसका संगत है, वह मनुष्य प्रामाणिक समझा जाता है, चाहे उसका वेष कैसा ही हो । परन्तु जिसने वेष ही को अपने जीवन का मुख्य आधार मान लिया है उसको तो अपने वेष की बाह्य संगतता का अवश्य ख्याल रखना चाहिये । मुंह पर मुंहपत्ति बांध कर और हाथ में प्लास्टिक के आवरण से अच्छादित ओघा रखते हुए युरोप अमरीका के विलासी होटलों में जाकर ठहरना, मुझे तो यह उस वेष को बड़ी विडम्बना जैसी बात लगती है । ऐसे व्यवहार में न आचार की ही प्रगति मालूम देती है और न विचार की ही प्रगति का आभास होता है ।

● ● ●

मैंने स्थानक वासी साधु वेष का परित्याग इसलिए किया कि मेरे विचार उस वेष के आचार के अनुरूप संगत नहीं रह रहे थे ।

● ● ●

इसके बाद मैंने अपनी विशिष्ट विद्या-अध्ययन की आकांक्षा को तृप्त करने के लिए मूर्ति-पूजक सम्प्रदाय का नूतन वेष परिधान किया तथा उस सम्प्रदाय की प्रथानुसार पूर्वावस्था का नाम बदल कर 'जिनविजय ऐसा नूतन नाम भी धारण किया । उसी नाम से मैं आज तक पहचाना जा रहा हूँ । इस प्रकार मैंने अपने नूतन वेष और नूतन नाम के साथ जीवन के दूसरे चरण में प्रवेश किया और कोई बारह वर्ष तक उस वेष में रहा । इन वर्षों में मैंने यथा योग उक्त वेष और सम्प्रदाय के अनुसार भाव-पूर्वक आचार धर्म का पालन करता रहा । मैं कई स्थानों में घूमा, फिरा और अपना विद्याभ्यास बढ़ाता रहा । कुछ शक्ति का विकास होने पर कई प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं साहित्यिक आदि प्रवृत्तियों में भी प्रवृत्त रहा । इन सबका वर्णन तो जब उस जीवन का परिचय देने का प्रसंग आयेगा, तब उसका आलेखन होगा । यहाँ तो मैं केवल इस मेरे परिवर्तन शील जीवन के वैसे ही एक पुनः वेष त्याग करने के प्रसंग का सूचना मात्र ही करना चाहता हूँ । उक्त प्रकार से मूर्तिपूजक साधु वेष में रहते हुए मुझे अनेक प्रकार के नये विचार आने लगे । स्थानकवासी साधु जीवन में विचारों का क्षेत्र बहुत सिमित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था । पर इस नूतन साधु जीवन में विचारों का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो रहा था। उनको लेकर मनो मन्थन भी खूब होता रहा। मैं जीवन के किसी विशाल कार्य क्षेत्र की खोज में लगने लगा अन्त में महात्मा गांधीजी ने सन् १९२० में भारत की आजादी के लिए और अंग्रेजों की शासन सत्ता को उखाड़ फेकनें के लिए देशव्यापी जो असहकार आन्दोलन शुरू किया, उसमें सक्रिय सहयोग देने का मेरा निर्णय हुआ । तद्नुसार मैंने उस नूतन साधु वेष का भी परित्याग कर दिया। क्यो और कैसे यह परित्याग किया—इसकी तो बहुत बड़ी लम्बी चर्चा है, परन्तु संक्षेप में, जब मैंने राष्ट्रीय आन्दोलन में जुट जाने का दृढ़ विचार किया, तब मुझे लगा कि अपने स्वीकृत साधु वेष का त्याग करके ही देश सेवा का कार्य अंगीकृत करना चाहिये । उस साधु धर्म के आचारानुसार मेरा देश सेवा वाला कार्य संगत नहीं लगता था । अतः मैंने स्वयं महात्माजी के साथ इस विषय में विचार विमर्श किया तथा मेरे अनेक विचारक एवं विद्वान मित्रों के साथ भी ऊहापोह किया । बाद में मैंने अखबारों में अपने वेष परिवर्तन करने वाले विचारों और कारणों का भी प्रसिद्धीकरण किया । यों उस सम्प्रदाय में मेरा काफी सम्मान था । अनेक विद्वान् लेखक, विचारक एवं पत्रकार मेरे घनिष्ट मित्र थे। कई विषयों के प्रौढ़ ग्रन्थ मैंने सम्पादित एवं प्रकाशित किये थे । अजैन विद्वानों में भी मेरा अच्छा सम्मानित स्थान बन गया था । श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विचारकों के अतिरिक्त दिगम्बर सम्प्रदाय के तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के भी कई नवीन विचारधारक बन्धु मेरे प्रशंसक हो गये थे । ऐसी स्थिति में भी जब राष्ट्र सेवा के कार्य में संलग्न होने का मेरा दृढ़ विचार हुआ तो मैंने साधु धर्म के आचार के साथ उसकी संगतता न समझकर उस वेष का परित्याग करना ही उचित समझा। तद्नुसार मैं उस वेष को उतार कर एक राष्ट्रीय सेवक के अनुरूप खद्दर का लम्बा झब्बा पहन कर * महात्माजी के साथ बम्बई से गाड़ी में बैठ गया और उनके साथ ही अहमदाबाद के उनके सत्याग्रह आश्रम में पहुँच कर उन्हीं की कुटिया में बैठकर मैंने अपने वेष परिवर्तन का मानसिक आनन्द मनाया तथा माता कस्तूरबा के पुण्य हाथों से परोसी गई थाली में भोजन कर जीवन की कृतार्थता का अनन्य अनुभव प्राप्त किया ।

यह मेरे वेष परिवर्तन की दूसरी प्रपंचात्मक संक्षिप्त कथा है ।

●

* नोट—उस समय जैसा अनेक राष्ट्रीय सेवक खद्दर का मटीले रंग का घुटने तक लम्बा कुर्ता पहना करते थे वैसा ही मैंने अपना वेष स्वीकार किया। वही वेष मेरा आजन्म रहा है उसके बाद, युरोप—गगन के सिवाय मुझे अपने उस वेष में किसी प्रकार के परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं हुई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस परिवर्तन को भी आज ५५ वर्ष जितना समय व्यतीत हो गया। उस वेष में मैं जब तक रहा तब तक उस सम्प्रदाय एवं वेष के अनुरूप आचार धर्म का यथा योग्य पालन करता रहा। आहार-विहार आदि की जो परिपाटी उस सम्प्रदाय में सर्व मान्य रूप से प्रचलित थी, मैं भी उसका अनुसरण बराबर करता रहा। केश लोच भी नियमानुसार करता रहा। सदैव पादविहार करता रहा। वाहन का कभी कोई उपयोग नहीं किया मेरी जिज्ञासा बुद्धि को तृप्त करने के लिए उस सम्प्रदाय में बहुत कुछ साधन थे, इसलिए मेरा मानसिक उत्साह हमेशा बढ़ता ही गया। अनेक पुराने ग्रन्थ-भण्डार मुझे देखने को मिले, जिनमें हजारों प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन का मुझे यथेष्ट अवसर मिला। इसलिए मेरी मूल विद्याभिरूचि का यथेष्ट परिपोष होता रहा। परन्तु उस बारह वर्ष के काल में पिछले ४-५ वर्षों में देश की राजकीय जागृति में, महात्मा गांधी जी के आगमन के साथ, जो नयी विचार धारा उत्पन्न हुई, उसने मेरे क्रांति प्रिय मन को भी आन्दोलित करना शुरू कर दिया। मेरे मन में अब उस स्वर्ग लोक की प्राप्ति की वैसी भावना नहीं रही, जो उसके पूर्व वाले साधु जीवन में काम कर रही थी। मेरे दिल में देश की स्वतन्त्रता के भाव जागृत होने लगी और महात्मा गांधीजी के राष्ट्रीय आंदोलन ने उन भावों को उत्तेजित करना शुरू किया। देश के कई क्रांतिकारी बन्धुओं की रोमांचक कहानियाँ मेरे पढ़ने में आयी। उन वीरों ने देश की स्वतन्त्रता के लिए किस प्रकार प्राणों की आहुतियाँ तक देने का महान् त्यागव्रत स्वीकार किया, इसका मनन करते हुए मेरे दिल में भी देश की स्वतन्त्रता की आग सुलगने लगी। मैंने जो साधु का वेष पहन रखा था, उसमें रहते हुए मैं ऐसे किसी क्रांतिकारी मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता था। ऐसे अनेक विचारों के कारण मुझे वह वेष मन में खटकने लगा। मुझे लगने लगा कि अपने स्वातन्त्र्य प्रेम के लिए अनेक प्रकार के लोगों का सम्पर्क करना चाहिये, अनेक स्थानों में भ्रमण करना चाहिये, जरूरत पड़े तो विदेशी भेष पहन कर विदेशों में भी जाना चाहिये और वहाँ के जन जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये। ये बातें मैं अपने उस साधु वेष में रहकर नहीं कर सकता था। इसलिए बहुत मनोमंथन के बाद उस सम्मानास्पद और अनेक जनों द्वारा वन्दनीय माने जाने वाले वेष का परित्याग करना पड़ा। ऐसी ही कहानी कहने वाला मेरा यह वेषत्याग रूप जीवन-प्रपंच का परिवर्तनात्मक किंचित वर्णन है। पाठक इसे एक क्षुद्र जीवन की अस्त-व्यस्त कथा के सिवाय उसका और कुछ महत्व न समझें। इन्हीं पंक्तियों के साथ मैं अपना किंचित् प्रस्ताविक समाप्त करता हूँ।

मुनिजिनविजय
निवास सर्वोदय आश्रम
चन्देरिया (चित्तौड़गढ़)

माघ शुक्ला १५ वि० सं० २०३२,
दिनांक १४-२-७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ न्त र्ना द

किसी अज्ञात लक्ष की खोज में,
चलता रहा मैं सारा जीवन,
पा न सका कहीं मैं उसको
खिन्नहो रहा है मेरा मन,

●

जाना चाहता हूं अब अन्य लोकमें,
लेकर उसी आशा को साथ,
आशा अमर है—इसलिए मैंने,
उसका पकड़ा पक्का हाथ.

●

अंतर्निमग्न होकर जब मैं,
सोचता हूं जीवन का अतीत
भ्रमणा मय बैषम्य सुरों का,
सुनता हूं कुछ अगम्य संगीत।

●

भूला फिरा मैं अज्ञात जंगल में,
जीवन सारा किसी दुराशा में
मृगतृष्णावत् वह आशा निकली,
निश्चेष्ट हो सोऊँ निराशा में.

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक अबोध जीवन की, अज्ञानावस्था में, की गई लक्षहीन
साधना का कुछ वर्णन करने वाली

मेरी जीवन प्रपंच कथा

मुनि जिनविजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानकवासी संप्रदाय का जीवनानुभव

विषयानुक्रम—

क्रम		पृष्ठ नंबर
१	साधु वेष की पहली रात	२
२	दिग्ठाण से प्रस्थान – धारका प्रथम चातुर्मास	८
३	डॉ० श्रीधर भांडारकर से मिलन और प्राचीन लिपि के ज्ञान की जिज्ञासा	१५
४	जैन साधुओं के आचार विषयक कुछ विचार	१७
५	इन्दौर शहर का वर्णन	२०
६	देवास का परिचय	२२
७	उज्जैन में चातुर्मास	२४
८	उज्जैन के एक उदार-चेता नगर सेठ का वर्णन	२५
९	उज्जैन के चातुर्मास में एक विचित्र घटना का अनुभव	३०
१०	केश लुंचन विषयक कुछ विचार	३४
११	महाकालेश्वर के मंदिर का दर्शन	३७
१२	उज्जैन से दक्षिण देश की ओर विहार	३८
१३	इन्दौर में मुन्नालालजी के भाई का विचित्र प्रसंग	४०
१४	इन्दौर से प्रस्थान	४३
१५	साधु जीवन की चर्या की कुछ चर्चा	४४
१६	सतपुड़ा के जंगल का उग्र विहार	४८
१७	चालीस गांव में मूर्ति पूजक साधु का दर्शन	६०
१८	वाघली से अहमदनगर की ओर विहार	६३
१९	वारी गांव का परिचय	६४
२०	वारी गांव का चातुर्मास	६६
२१	वारी गांव में अज्ञात शिक्षक से स्वल्प समागम	६८
२२	एक हिन्दु सन्यासिनी का आगमन	७१
२३	भुसावल से मालवे की तरफ प्रयाण	७९
२४	उज्जैन का चातुर्मास और मेरे उस वेष का विसर्जन	८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरी जीवन प्रपंच कथा

मुनि जिनविजय लिखित जीवन-कथा का उत्तर भाग

निर्लक्ष्य जीवन बीता मेरा, पाया न कुछ मैंने तत्व विशेष।
आया ज्योंही जा रहा हूं जगत से, पाए बिना दृष्टि उन्मेष।

—स्वानुभूति

स्थानकवासी सम्प्रदायका जीवनानुभव

पूर्व प्रकाशित जीवन-कथा को लगभग ५ वर्ष व्यतीत होने जा रहे हैं। उस समय खयाल था कि कुछ समय बाद आगे का कथा-प्रसंग लिखना प्रारंभ कर दिया जायगा पर इस बीच कई अन्यान्य कारण उपस्थित होते गये और मन लिखने में उत्सुक नहीं रहा। बीच में कई भाइयों के पत्र भी आते रहे कि मैं अपनी जीवन-कथा का अगला भाग आलेखित करूँ, पर मनमें इस कथा को लिखने के लिये वैसा कोई उत्साह प्रगट नहीं हुआ।

इस बीच मेरा स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन अधिक क्षीण होता गया और मुझे अपने जीवन के विषय में कोई विशेषता का भाव अनुभव न हुआ। इस वर्ष के पिछले कई महीनों मुझे अपने अहमदाबाद वाले स्थान में रहने का प्रसंग उपस्थित हुआ। वहाँ पर भी कई मित्रों ने आकर इस कथा के आगे का वर्णन लिख डालने का आग्रह किया। कुछ मित्रों ने तो कहा कि यदि मैं लिखवाना चाहूँ तो वे इस काम के लिये अपना समय भी देने को तैयार हैं।

एक अच्छे गुजराती लेखक तो नियमित रूप से आकर मुझसे जीवन-कथा के भिन्न भिन्न प्रसंगों का लेकर प्रश्न पूछने लगे और मैं उनका उत्तर यथा स्मरण लिखवाता रहा। यों प्रायः एक महीने तक यह क्रम चलता रहा और उन्होंने कोई २००, ३०० पृष्ठों जितना मेटर लिख डाला परन्तु यह काम गुजराती भाषा में हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद में पिछले जुलाई महीने के अन्त में अहमदाबाद से मेरा यहां चन्देरिया में २५ वर्ष पहले स्थापित अपने सर्वोदय साधना आश्रम में आना हुआ । यहाँ आने के बाद मेरा स्वास्थ्य अचानक बहुत कुछ बिगड़ा सा अनुभव होने लगा । जीवन का समापन अब शीघ्र होने जा रहा है ऐसा कुछ आभास भी होने लगा । स्वाभाविक ही मैं बिछौने में पड़े पड़े जीवन का सिंहावलोकन करने लगा । जीवन का वैसे प्रवास काल तो बहुत लम्बा है । पूरे ७५ वर्ष से भी अधिक समय तक मैं चलता रहा फिर भी किसी स्थान और किसी लक्ष्य पर स्थिर होकर नहीं बैठा । इस दीर्घ कालीन प्रवास में अनेक छोटे बड़े विशिष्ठ व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला । इन व्यक्तियों के सम्पर्ककालीन संस्मरणों का विशाल पुन्ज मेरे इस छोटे से मन में इतना भरा हुआ है जिनकी गिनती करना भी अशक्य सा लग रहा है । यों तो प्रकृति के नियमानुसार यह स्मरण पुंज इस मन के विलीन होने के साथ ही क्षण भर में विनष्ट हो जायगा; परन्तु जब तक यह मन कुछ क्रियाशील बना रहता है तब तक इन संस्मरणों को बाहर फेंक देना भी शक्य नहीं हो रहा है । इस खयाल से इन दिनों मेरा मन फिर थोड़ा सा उस अधूरी जीवन-कथा के सम्बन्ध में जितना कुछ लिखा जा सके उतना लिखने को अब प्रवृत्त हो रहा है न मालूम कब तक और कहाँ तक यह कथा आगे चलेगी ।

साधु वेष की पहली रात

अब मैं जीवन के उस दिन का फिर स्मरण करना चाहता हूं, जिस दिन मैंने दिग्ठाण के उस बगीचे में साधुवेश पहने पहली रात व्यतीत की !

हाँ, तो आश्विन शुक्ला की यह त्रयोदशी की रात है । आकाश में चांदनी छिटक रही है । शरद् कालीन शुभ्र आकाश अपनी दिव्य प्रभा से प्रकाशित हो रहा है । धरती माता हरे भरे खेतों और जंगलों से उल्लसित हो रही है । ऐसी ही एक रात सुखानन्दजी में जब किशन भैरव के रूप में उस विशाल वट वृक्ष के चौंतरे पर मृगछाल पर बैठा हुआ और सारे शरीर पर भभूत लगाये ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय का मंत्र मन में जाप करता हुआ जिस मनोभाव का अनुभव किया–उसका वर्णन उस स्थान पर किया है । आज जीवन में फिर किसी अन्य मार्ग पर चलने का नया प्रयास शुरू हो रहा है । आज मैंने किशनलाल के वे सब पुराने कपड़े—जो सामान्य कुर्ता और छोटीसी धोती जितने थे, उनको शरीर पर से उतार फेंका और उसकी जगह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक चद्दर और चोल पट्टा पहन कर जमीन पर कुछ गरम ऊन का कंबल सा बिछौना बिछा कर बैठा हुआ अपने आपको देख रहा हूँ। मुँह पर एक पट्टी बांधली है--जो जीवन में पहले कभी नहीं बांधी थी। यह जरूर अटपटी सी लग रही है। जो चद्दर मुझे ओढने के लिये दी गई वह किसी खास किस्म के लट्ठे की थी और उस पर हींगलू आदि कई प्रकार के रंगों से स्वस्तिक आदि चित्रावली की गई थी। स्थानकवासी सम्प्रदाय के शायद उस प्रदेश के भाइयों में यह प्रथा थी कि नव दीक्षित होने वाले भाई को जो पहली चद्दर ओढ़ाई जाय, वह इस प्रकार के चित्र विचित्र रंगों से मंडित हो। अन्य प्रदेश के साधुओं के लिये यह प्रथा थी या नहीं इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मैं जरूर कई महीनों तक उसी चद्दर को ओढ़ कर स्थानक से बाहर जाता रहा, यहां तक कि जब तक वह जीर्ण होकर फट नहीं गई।

हाँ, तो मैं उस रात उसी चद्दर को ओढ़ कर तीन चार घण्टे सोया रहा--पास में तपस्वीजी भी सोये थे। श्याम को उन्होंने प्रतिक्रमण का पाठ सुनाया और कुछ पलथी मार कर बैठे हुए कायोत्सर्ग करना भी सिखाया। फिर नमो अरिहंताणम् की एकाध माला जप कर सो जाने का आदेश दिया। मैं सो गया, परन्तु अपने स्वाभाविक चंचल मन के कारण पूर्व की कुछ घटनाओं का स्मरण होने लगा। फिर वही बात,आज दिन में कितने ठाठ बाट के साथ हाथी पर बैठ कर यह नूतन साधु वेश धारण करने के लिये दिग्ठाण गांव से जुलूस के रूप में हजारों भाई बहिनों के साथ बेंडबाजों की धुन सुनता हुआ--मानों किसी राजकुमार का राज तिलक होने जा रहा है--ऐसा नाटकीय दृश्य का अनुभव करता हुआ बगीचे में उतरा और घण्टे भर में वह सब नाटकीय वेश और नाटकीय ठाट बाट अदृश्य हो गया और मैं इस प्रकार इस चांदनी को शुभ्र पुलकित रात्रि में एक आम्र वृक्ष के नीचे मामूला सा बिछौना बिछा कर निद्रा लेने का व्यर्थ प्रयास कर रहा हूँ। क्षण भर में रूपाहेली और माता राजकुमारी का स्मरण हो आया। गुरुदेवी हँसजी का भी स्मरण हो आया। बाद में सुखानंदजी से भैरवी दीक्षा देने वाले खाखी बाबा शिवानंदजी का भी स्मरण हो आया किस तरह उज्जैन की उस शिप्रा नदी के तट वाले उन मठ में से जान बचाने के लिये वह चिमटा, वह कमण्डल फेंक कर गुप चुप एक कुर्ता पहन कर निकल भागा। फिर घूमता फिरता कैसे बदनावर पहुँचा और वहां से उस महाजन दम्पति के संसर्ग से दिग्ठाण तपस्वी जी महाराज के दर्शन करने चला आया और कुछ ही दिनों में वह सारा नाटक समाप्त कर आज इस रात में बैठा हुआ अपने भविष्य के किसी अज्ञात मार्ग में चलने को निकल पड़ा।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर हम दिग्ठाण गांव वाले स्थान में जाकर स्थिर होकर रहने लगे। साधु जीवन की चर्या का आज से प्रारम्भ हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि मैं बिल्कुल इस चर्या से अनभिज्ञ और अपरिचित था दिग्ठाण के स्थानक में जाकर जैसे ही हम बैठे, वैसे ही सैंकडों जैन भाई बहिन साधुओं को वंदनादि करने को आने लगे । सब ही मुझे कुतुहल से देख रहे थे । कल शाम तक मैं किस वेश में दिग्ठाण की गलियों में घूम रहा था और किस तरह मेरा राजशाही ठाठ वाट से दिक्षा महोत्सव का जुलूस निकला और मैं बहुमूल्य जरी के कपड़े पहन कर हाथी के होदे पर बैठा हुआ दिग्ठाण के बाजार मे निकला और हजारों की सख्या में ताँबे के पैसे हाथी के होदे पर बैठा मैं इधर उधर खड़े लोगों पर उछालता रहा, आदि विचित्र दृश्य उन सब भाई बहिनों की आँखों के सामने नाच रहा था। वही किशनलाल आज आठ बजे इस स्थानक में साधु वेश पहने हुए एक छोटे से पाट पर बैठा बैठा सिकुड रहा था । भाई, बहिन, लड़के लड़कियां इत्यादि जो कुछ मुझे उन थोड़े दिनों में बहुत परिचित हो गये थे, अब कइयों का तो मैं मेरे साथ कुछ आत्मीय सा भी जम गया था । वे मुझे अब बड़ी कुतूहल की दृष्टि से देखने लगे और नीचे झुक झुक कर मुझे नमस्कार भी करने लगे। कुछ एक दो बहिनें जो मेरे साथ अत्यन्त वात्सल्य भाव रखने लग गई थी, उनकी आँखों में तो कुछ आँसु से भी आये मालूम दिये ।

समय होने पर तपस्वी जी महाराज ने व्याख्यान देना शुरू किया। गांव वाले तथा दीक्षा महोत्सव के निमित्त बाहर से आने वाले भाई बहिन भी बड़ी संख्या में व्याख्यान सुनने को उपस्थित हुए। दिग्ठाण का वह स्थानक छोटासा ही था । वास्तव में वह स्थानक नहीं था, परन्तु किसी महाजन की एक बड़ी सी दुकान थी, उसी में तपस्वीजी महाराज ने चातुर्मास के लिये निवास किया था । दीक्षा प्रसंग पर जब अनेक लोगों के आने की संभावना को लक्ष में-लेकर उस स्थानक के आगे का जो खासा चौड़ा सा बाजार का रास्ता था-उस पर कनात वगैरह बाँध कर लागों के बैठने की व्यवस्था करदी थी ।

उस दिन के भोजनोंपरान्त आंगतुक भाई बहिन अपने अपने गांव जाने वाले थे, वे सब व्याख्यान में उपस्थित हुए और प्रसंगानुसार गांव के और बाहर वाले कई भाग्यवान श्रावकों ने नारियल, लड्डू, पेड़े, बतासे, बादाम, छुहारे आदि वस्तुओं की पुड़िया बाँध बाँध कर व्याख्यान सुनने वाले भाई बहिनों लड़के लड़कियों को धर्म प्रभावना के खयाल से समर्पित की ।

इस प्रकार एक एक भाई के पास कोई तीन२ चार२ किलो वजन वाली ये सब चीजें हो गई। व्याख्यान के बाद गांव वालों की ओर से सबको सामूहिक भोजन दिया गया । जिसमें कई प्रकार की अच्छी२ मिठाइयां आदि परोसी गई थी । शाम तक लोग अपने अपने गांव चले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गये ।

यों मेरे लिये वह सारा दिन खूब व्यस्त सा रहा । गोचरी के समय एक साधु आहार लेने गया । वह हम साधुओं के योग्य आवश्यक आहार ले आया और हम सब साधुओं ने एक साथ बैठकर आहार किया । आहार के लिये जैसा कि साधुओं के पास काष्ठ के बने हुए छोटे बड़े तीन चार पात्र होते हैं, उन्ही में यह आहार किया जाता है। मेरी दीक्षा निमित्त श्रावकों ने मेरे लिये तीन चार नये काष्ठ पात्रों का एक सेट साधुओं को भेंट कर दिया था। तपस्वी-जी ने उन्हीं पात्रों में मेरे खाने योग्य दो एक रोटी, कुछ सब्जी, दाल जैसी प्रवाही चीजें मेरे पात्र में रखदी । आहार के समय मुँह पत्ति खोलकर पास में रखदी जाती है । मैंने भी पहले दिन दीक्षा ग्रहण करते समय जो मुँह पत्ति मुख पर बांधी थी इस समय खोल कर पास में रखदी, मनमें बहुत अटपटा सा लग रहा था। छोटे से पात्रों में जो कुछ खाने योग्य रोटी आदि थी उसको मैंने जल्दी जल्दी खाली। बचपन से ही मेरी आदत खाने के समय जल्दी जल्दी खा लेने की रही है । मुझे जल्दी जल्दी ग्रास खाते हुए देखकर तपस्वीजी ने कहा-धीरे धीरे खा !

आहार में श्रावक लोगों ने बहुत आग्रह पूर्वक कुछ मिष्ठान्न आदि बहेराये, परन्तु साधु के आचार मुताबिक जितना अन्न खाया जा सके उतना ही अन्न ग्रहण करने की विधि है । किंचित् मात्र भी अधिक खाद्य वस्तु नहीं ली जाती, क्योंकि साधु को पात्र में उच्छिष्ठ रखने का निषेध है और किंचित् मात्र भी बचे हुए को बाहर फेंकने की मनाई है । कभी कार्य वश ऐसा अन्न पात्र में अधिक आ जाय और वह पूरा नहीं खाया जाय तो उसे बाहर जंगल में जाकर मिट्टी आदि के नीचे दबा देना पड़ता है। जैन साधुओं की भाषा में इसे परठ देना कहते हैं। किंचित् मात्र भी किसी प्रकार की खाद्य सामग्री रात के लिये अपने पास रख नहीं सकते। यह सर्व विदित बात है कि जैन साधु न कभी सूर्यास्त के बाद अन्न ले सकता है न पानी ही पी सकता है। रात के लिये जैन साधु को किसी भी प्रकार का असन और पान अर्थात् खाना खाना और जल पीना सर्वथा निषिद्ध है ।

इसी तरह रात को अपने स्थानक से बाहर जाना भी निषिद्ध है। यों जैन साधुओं का आचार-मार्ग एक प्रकार से बहुत कठिन समझा जाता है। मुझे अब इस आचार मार्ग का ज्ञान प्राप्त करना था और तदनुसार उसका पालन करने का भी अभ्यास करना था । दूसरे दिन आश्विन शुक्ला पूर्णिमा थी तपस्वी जी ने उसी दिन से मुझे कुछ पढ़ाने का मुहूर्त किया । जैसा कि उस सम्प्रदाय के साधुओं की पढ़ाई की परिपाटी है—तदनुसार मुझे तपस्वीजी ने सर्व प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशवैकालिक- सूत्र का मूल-पाठ कंठस्थ करने को कहा उस समम इस सूत्र की कोई छपी हुई पुस्तक नहीं था। एक सौ डेढ़सो बरस पुरानी हाथ की लिखी हुई पोथी उनके पास थी उसका पहला पन्ना निकाल कर मेरे हाथ में रखा और कहा कि इस पन्ने में पहले पहल जो पाँच गाथाएँ लिखी हुई हैं उनको कंठस्थ करो। उन्होंने स्वयं वे पाँच गाथाएँ बोल कर मुझे सुनाई और 'तुप बैठेर इस तरह इन पाँच गाथाओं का याद करो'--ऐसा कहा।

मेरा अक्षर बोध का ज्ञान उस समय ठीक ठीक था-जिससे मैं स्वय उस पन्ने में लिखी हुई उन पाँचों गाथाओं का धीरे से पढ़ गया और कोई दो घण्टों में एकांत में बैठे हुए मैंने उन पाँचों गाथाओं का कठस्थ कर लिया। मेरा कुछ शब्दोच्चार ठीक था। पहले ही मैंने गुरू-वर्य याति श्री देवीहँसजी के पास इस प्रकार के कुछ जैन स्तोत्र पढे हुए थे-जिससे मुझे इन पांच गाथाओं को कठस्थ करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई।

जिस सूत्र की ये प्रथम पाँच गाथाएं मैंने पढ़ी, उस सूत्र का नाम दशवैकालिक सूत्र है। जैन साहित्य में अर्थात् जैन-आगमों में यह एक छोटा सा महत्व का आगम-ग्रन्थ है। इस आगम ग्रन्थ में कुल मिला कर दस अध्ययन हैं और सब मिला कर जिनका गाथा प्रमाण ७०० जितना है। जैन साधु परम्परा के अनुसार जो कोई नव दीक्षित होता है--उसे सबसे पहले यही आगम-ग्रन्थ पठना होता है। उस आगम ग्रन्थ में जैन साधु को जीवन में पालने योग्य सभी मुख्य मुख्य आचारों का वर्णन है।

जिस सम्प्रदाय में मैने नवीन दीक्षा धारण की, उसमें यह प्रथा मुख्य रूप से प्रचलित थी। अन्य जैन साधु सम्प्रदायों में ऐसा कुछ निश्चित व्यवहार मालूम नहीं देता। श्वेताम्बर-मूर्ति पूजक सम्प्रदाय में नव दीक्षित होने वाले साधु के पठन-पाठन का क्रम अन्य ढंग से है। और जो पांच गाथाएँ मैंने उस दिन कंठस्थ करली वह दशवैकालिक का उतनी ही गाथाओं वाला छोटा सा प्रथम अध्ययन है। इसका प्रथम वाक्य जो आज भगवान महावीर द्वारा प्रवलित जैन धर्म के अहिंसा, संयम और तप इन तीन मूलभूत सिद्धान्तों का निदेशक है। इसका प्रथम वाक्य 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठम् अहिंसा संयमो तवो' ऐसा है इसमें सूचित किया गया है--अहिंसा, संयम और तप ये ही धर्म के उत्कृष्ट और मंगलमय तत्व हैं। इन्हीं अहिंसा, संयम और तप का आचरण जैन साधु को किस तरह जीवन में पालन करना चाहिये। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन इस दशवैकालिक आगम ग्रन्थ में किया गया है। अतः यह आगम ग्रन्थ जैन साधु को अवश्य पढ़ना चाहिये। मैंने भी तदनुसार उस दिन से इस सूत्र को पूरा कंठस्थ कर लेने का उपक्रम चालू किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूंकि इस सूत्र की भाषा प्राकृत है और नव दीक्षित को उस भाषा का कोई परिचय नहीं होता। इसलिये मूल सूत्र के पढ़ जाने से तो सूत्रगत बातों का ज्ञान नहीं होता। इस सूत्र का ठीक ठीक रहस्य जानने के लिये तो प्राकृत भाषा के विशेष ज्ञान की आवश्कता होती है, परन्तु सूत्र पाठ तो कंठस्थ कर लेने के बाद उसका अर्थ समझना आवश्यक होता है। और वह अर्थ उस जमाने की प्रचलित लोकभाषा में लिखा रहता है इसलिये इस लोकभाषा द्वारा सूत्र का अर्थ समझने का नूतन दीक्षित जैन साधु प्रयत्न करते रहते हैं।

यों पीछे से मुझे कुछ अध्ययन करने के बाद मालूम हुआ कि—इस सूत्र पर तो श्री हरिभद्र-सूरि जैसे महान् शास्त्रकारों ने संस्कृत भाषा में बड़ी बड़ी टीकाएँ लिखी हैं। पर वह तो मुझे बहुत वर्षों बाद ज्ञान हुआ उनको इन बातों का कोई ज्ञान नहीं था। वे मुझे सूत्र का अर्थ समझाने के लिये पुरानी लोकभाषा में लिखे हुए अर्थों का धीरे धीरे मनन करते रहना चाहिये—ऐसा कहा करते थे।

यह तो मुझे याद नहीं है कि उन तपस्वी जी को इस सूत्र का ठीकर अर्थ ज्ञात था या नहीं। मुझसे पहले जो मेरे जितनी ही आयुष्य वाले एक बालक ने दीक्षा लेली थी, वह उस समय उस सूत्र का कुछ आगे का पाठ बैठा बैठा कठस्थ किया करता था। उस समय तक इस सूत्र के प्रथम चार अध्याय उसने कंठस्थ कर लिये थे। उसके साथ साथ जैन स्थानकवासी साधु सम्प्रदाय में जो पठन पाठन का क्रम है-तदनुसार जिनको थोकड़ा शब्द से पहचाने जाते हैं वैसे पुरानी लोक भाषा में ग्रथित छोटे बड़े अनेक संग्रह किये हुए हैं उनका भी साथ साथ अध्ययन किया जाता है। इन थोकड़ा शब्द से परिचित प्रकरणों में जैन-आगमों में वर्णित विचारों, आचारों और तत्वों का सार संकलित करने का प्रयत्न किया गया है। मूर्ति पूजक सम्प्रदाय में उन थोकड़ों के पढ़ने का प्रचार नहीं है। इस सम्प्रदाय वाले थोकडों जैसे ही जैन-शास्त्रों के सार समझाने वाले प्राकृत भाषा में छोटे छोटे स्वतन्त्र प्रकरण-ग्रन्थ मिलते हैं-जिनमें जैन धर्म के जीव अजीव आदि सभी तत्वों के सार संकलित हैं-उन्हीं का मूर्ति पूजक सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्ति का अध्ययन कराया जाता है। 'जीव-विचार, नवतत्व प्रकरण, दंडक प्रकरण आदि ऐसे कई प्रकरण-ग्रन्थ हैं जो क्रम से पढ़े पढ़ाये जाते हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय में यह प्रकरण-ग्रन्थ मान्य नहीं हैं, क्योंकि इनके बनाने वाले आचार्य बहुत पीछे के समय में हुए हैं। अतः वे प्रमाण-भूत ग्रन्थ नहीं माने जाते। इसीलिये स्थानकवासी सम्प्रदाय में दशवैकालिक उत्तराध्ययन, आचारांग सूत्र आदि मूल आगमों के पठन-पाठन की प्रथा रही है।

जिस समय मैं दीक्षित हुआ उस समय स्थानकवासी सम्प्रदाय में संस्कृत भाषा के अध्ययन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार या प्रचार नहीं था । कोई गिने हुए बड़े साधु कुछ संस्कृत भाषा जानने वाले हैं ऐसा मैंने सुना था, परन्तु मेरा वैसे साधु से उस अवस्था में कभी काई मिलाप नहीं हुआ ।

मेरी बुद्धि कुछ चंचल थी, इसलिये मैंने कोई एक महिने में दशवैकालिक सूत्र के प्रथम के चार अध्याय कंठस्थ कर लिये थे । साथ में कुछ कुछ थोकड़ों क पाठ भी करता रहता था । उस समय कोई भी छपी हुई पुस्तक न मैंने देखी और न मेरे हाथ में हा आई ।

यों दीक्षित होने के बाद एक महिना हम दिग्ठाण में रहे । कार्तिक पूर्णिमा के दिन चतुर्मास का समय समाप्त हो गया और उसके दूसरे ही दिन हमने दिग्ठाण से विहार कर दिया ।

दिग्ठाण से प्रस्थान धार का प्रथम चतुर्मास

दिग्ठाण से चले बाद कुछ गांवों में होते हुए मालवे की उस इतिहास प्रसिद्ध धारा नगरी का नाम मैंने बचपन में ही अपने माता पिता आदि कुटुम्बी जनों से सुन रखा था। मेरा जन्म परमार नामक राजपूत कुल में हुआ था और उन परमारों की धारानगरी मुख्य राजधानी थी। इतिहास प्रसिद्ध ये बात मेरे बचपन से हो अन्तर में कहीं छुपी हुई थी। मेरी माता राजकुंवर जो ऐसी पुरानी बातें जानने वाली थी, उसके मुँह से कई दफा धार और राजाभोज की कहानी आदि सुनने को मिली, इसलिये धारा नगरी देखने का अब जीवन में अवसर आ रहा है यह जानकर मेरा मन उत्सुक हो रहा था । कोई ७, ८ दिन बाद हम धार पहुँचे ।

धार उस समय मालवे का स्वतन्त्र स्टेट था। संयोग वश वहाँ राजाजी परमार वश के राजपूत कुल के थे, परन्तु वे मूल में महाराष्ट्र निवासी थे और मुसलमानों के युग में उन्होंने शायद मराठा पेशावाओं के समय में महाराष्ट्र के पेशवा शासकों के समय इन लोगों ने धार को अपने कब्जे में ले लिया था । छोटा सा ही स्टेट था। हम जब धार के पास पहुँचे तो उसके आस-पास की छोटी छोटी पहाड़ियां--उनके बीचमें बने हुए पानी के कई छोटे बड़े तालाब आदि से वह प्रदेश मुझे बड़ा सुन्दर मालूम दिया। धार में इस सम्प्रदाय वाले श्रावकों ने अच्छा सा धर्म स्थानक बना रखा था । धार में रहने वाले श्रावक लोग अधिकतर पोरवाल जाति के वैश्य थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उनमें दो चार घर अच्छे मालदार समझे जाते थे। ये सब श्रावक तपस्वी जी के सम्प्रदाय के अनुरागी थे। इसलिये तपस्वी जी मुझ जैसे एक नव दीक्षित बालक साधु को साथ लेकर धार पहुँचे तो श्रावकों ने उनकी बड़ी आव भगत की। नियमानुसार हम लोग स्थानक में ठहर गये।

स्थानक एक अच्छा सा पुराना मकान था और उसमें एक तरफ तीन चार कमरे भी ऊपर की मंजील पर बने हुए थे। स्थानक की रचना देखकर मेरा मन कुछ प्रसन्न हुआ। हम साधु लोग रोज सुबह शौच के लिये गांव के बाहर कहीं दूर निर्जन प्रदेश में चले जाते थे। आसपास की छोटी छोटी पहाड़ियों के इर्द गिर्द दो तीन अच्छे बड़े तालाब बने हुए थे। उनकी पाल पर होकर शौचादि के लिये जाना आना मुझे बड़ा अच्छा लगता था। एक तरफ एक छोटी सी पहाड़ी पर चामुंडा देवी का मन्दिर था जहाँ देवी के उपासक सैंकड़ों लोग नियमित आते जाते रहते थे।

शायद कोई एक महिना तक हम धार में रुके। तपस्वी जी हमेशा सुबह घण्टा आधा घण्टा व्याख्यान दिया करते थे। जिसको सुनने के लिये गांव के विशिष्ठ भाई बहिन आया करते थे। इस व्याख्यान के समय मैंने धार ही में सर्व प्रथम एक नई प्रथा देखी। व्याख्यान के अन्त में कुछ भाई बहिन स्तवन या सज्झाय रूप एक दो गीत गाया करते थे। एक दिन भाई गाते थे तो दूसरे दिन बहिनें गाती थी। ये भाई बहिन वहां के धनवान जैन कुटुम्बों के थे। स्त्रियों में खास पर्दा का व्यवहार नहीं देखा यह कुटुम्ब तपस्वी जी के गुरु रामरतनजी महाराज का संकित-पूरो भक्त कुटुम्ब था। श्री रामरतनजी महाराज ने धार में कई चातुर्मास किये थे। बाद में वे उज्जैन में जाकर स्थिर वास करके रहने लगे। शायद तपस्वी जी भी बहुत वर्षों बाद धार आये थे। इसलिये इन श्रावकों का उन पर विशेष अनुराग था। मैं उस सम्प्रदाय में एक नव दीक्षित साधु था। मेरी छोटी ही उम्र थी। कुछ पढ़ने करने में रुचि वाला था। इसलिये उस कुटुम्ब के कुछ संस्कारी युवक और बहिनें अक्सर मेरे पास आकर बैठा करते थे। यद्यपि उनको इस बात का कोई आभास नहीं मिला कि मैं दीक्षित होने के पहले किस अवस्था में कहां रह चुका हूँ।

मुझे तो लोग एक ब्राह्मण का एक अनाथ सा लड़का समझा करते थे, परन्तु मैंने जैन दीक्षा लेली और मैं आगे चल कर एक अच्छा नामी साधु बन सकूंगा—इस कल्पना से वे कुछ प्रसन्न रहते थे। आहार के लिये हमेशा तपस्वी जी के बड़े शिष्य मन्नालालजी जाया करते थे। एक दिन उस धनिक कुटुम्ब की मुखिया श्राविका जिसके दो तीन पुत्र, पुत्रवधूएँ तथा पुत्रियां आदि का अच्छा बड़ा परिवार था और वह कुटुम्ब धार में सबसे अधिक सम्पन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाजन थे—कुटुम्ब के रूप में प्रसिद्ध था और वे लेन देन आदि का बड़ा व्यवसाय करते थे। शहर में सबसे बडे लखपति आसामी समझे जाते थे। मुखिया श्राविका ने कहा कि तपसी जी महाराज आप अपने नये चेले के साथ हमारा घर पावन करने पधारें।

एक दिन तपसी जी मुझे साथ लेकर उसके घर गये। मेरे हाथ में झोली थी और उसमें दो तीन काष्ठ पात्र थे। श्राविका ने बादाम, पिस्ते, द्राक्षा, छुहारे आदि मेवों के भरे हुए थाल में से थोड़े थोड़े दाने मेरे पात्र में बेहराये फिर वह अपनी कुछ समृद्धि दिखाने की दृष्टि से ऊपर वाले कमरे में हमको लेगई उस कमरे में जगह जगह सोना चांदी आदि के जेवर अलग अलग ढेरों के रूप में रखे हुए थे। कोई पचासों की संख्या में वे ढेर थे। मैं तो आश्चर्य चकित होकर उनके सामने मुग्ध भाव से देखता रहा। मेरी समझ में नहीं आया कि यह क्या तमाशा है। तपसी जी भी उसी तरह कुछ आश्चर्य भाव से देखते रहे फिर उन्होंने धीरे से पूछा सेठानी जी यह सब क्या है। इन कीमती जेवरों को इस तरह क्यों खुले रख छोड़े हैं। कोई संदूक बक्से आदि नहीं है – जिनमें यह रखे रहें। तब सेठानी ने कहा कि महाराज सा. ये सब जेवर हमारे अलग अलग आसामियों के हैं जिनको हम उनकी आवश्यकतानुसार रुपये ब्याज से देते रहते हैं और जब उनका काम हो जाता है तब वे आकर मय ब्याज के हमारे रुपये दे जाते हैं। उन रुपयों की एवज में वे लोग पास के सोना चांदी आदि के जो जेवर होते हैं—हमारे पास रख जाते हैं। हम उनको एक पत्र बनाकर लिख देते हैं कि इतने वजन के इतने जेवर आज तुमने हमारे यहां रखे हैं और हमने इसकी एवज में तुमको मांगे हुए इतने रुपये दिये हैं। जब रुपये वापस कर दोगे तब ये रकमें तुम लौटा लेना। इस तरह पचासों आसामियों के ये जेवर आदि हैं बक्सों में हम इसको कहां और कैसे रखें, इसलिये इनको ऊपर वाले कमरे में रख छोड़े हैं आदि।

देख सुन कर हम वहां से अपने स्थानक में चले आये, धार के उस श्रावक कुटुंब के घर में जो यह बात मैंने देखी वह मेरे मन में सदा के लिये अंकित हो गई। क्यों कि सन् १८५७ में हुए अंग्रेजों के विरुद्ध वाले बल्वे में जिसके ठिकाणे का सर्वनाश हो गया था उस राजपूत घराने के बिल्कुल एक दरिद्र कुटुम्ब में जन्मा हुआ और जीवन के १५ वर्ष जैसे बाल्यकाल में जिस तरह व्यतीत हुए—उनमें ऐसे कभी किसी धनिक कुटुम्ब के घर की देखने की कोई कल्पना ही नहीं हो सकती थी।

धार के विषय में और वहां के परमार वंशीय राजा भोज आदि की कुछ कहानियां मैंने अपनी भाषा तथा यतियों के सहवास में रहते हुए सुन रखी थी, पर उसका कोई विशेष ज्ञान मुझे नहीं था। धार जब हम गये तब मन में कुछ तर्क हुआ था कि यह वही धारा नगरी है जिसकी कुछ कहानियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन रखी थी, परन्तु इसका खुलासा मिलने का कोई सम्भव नहीं हुआ। एक दिन एक श्रावक का लड़का जो शायद स्कूल में ८ वीं कक्षा में पढ़ रहा होगा, वह मेरे पास आकर बैठ गया। मैंने यों ही उससे पूछा कि तुम क्या करते हो तो उसने कहा कि मैं स्कूल में पढ़ रहा हूं। मेरे बाप राजकीय किसी कचहरी में नौकरी करते हैं। मैंने पूछा— स्कूल में क्या क्या बातें पढ़ाई जाती हैं तो उसने गणित, इतिहास, भूगोल आदि की कुछ बातें कहीं। लेकिन ये मेरी समझ के बाहर की बातें थी, फिर मैंने यूँहीं जिज्ञासा से पूछा कि स्कूल में तुमको यह कोई बात पढ़ाई गई कि इस धारा नगरी में राजा भोज आदि कब हो गये? तब उसने कहा कि हमें भूगोल की एक किताब पढ़ाई जाती है जिसमें यह धारा नगरी किसने बसाई और राजा भोज आदि कब हो गये, उसका कुछ वर्णन उसमें दिये गये पाठ में पढ़ा है। मैंने कहा —वह किताब तेरे पास हो तो लाना, मैं उसको पढ़ना चाहता हूँ। दूसरे दिन भूगोल की वह फटी हुई पुरानी पुस्तक उसने लाकर मुझे दी, उसमें धार और राजा भोज आदि की कुछ ऐतिहासिक बातें लिखी हुई मैंने पढ़ी, मेरे मन में एकदम कोई नये ज्ञान के प्रकाश की किरण झलकने लगी।

उस पाठ में मैंने सर्वप्रथम पढ़ा कि राजा भोज ने धारानगरी में एक बहुत बड़ा विद्यालय बनवाया था। जिसमें हजारों छात्र संस्कृत भाषा पढ़ते थे। उस विद्यालय का नाम सरस्वती मन्दिर था। पीछे से मुसलमानों ने उस सरस्वती मंदिर को तोड़ डाला और उसको एक मस्जिद का रूप दे दिया। धार में यह मस्जिद अब भी विद्यमान है, जिसे लोग अब भी कमाल मौला की मस्जिद के नाम से पहचानते हैं।

एक दो दिन बाद वह लडका जब मेरे पास फिर आया तो मैंने पूछा कि तुमने वह कमाल मौला की मस्जिद कभी देखी है? उसने कहा नहीं महाराज मैंने उसे कभी नहीं देखी। हाँ लोग कहते हैं कि शहर से बाहर अमुक तरफ वह मस्जिद आई हुई है। मेरे मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं कभी जाकर उस मस्जिद को देखूं।

एक दिन मैं तपस्वी जी महाराज के साथ शौच के लिये शहर से बाहर उधर हो चले गये। आसपास में काफी झाड़ झंखाड़ खडे थे, उसके बीच में मस्जिद का बड़ा सा पुराना इमारत नजर आई। मैंने तपस्वी जी से कहा महाराज चलो इस मस्जिद को जाकर देखें। सुनकर पहले तो उन्होंने कहा मस्जिद में जाकर क्या देखना है? परन्तु मैंने कहा—अभी एक स्कूल की किताब में मैंने पढ़ा कि यह मस्जिद असल में राजा भोज का सरस्वती विद्या मन्दिर है—मुसलमानों ने उसे तोड़ताड़ कर मस्जिद का रूप दे दिया है। मेरा कुछ आग्रह होने से तपस्वी जी बोले—चलो अन्दर देख आवें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मस्जिद का दरवाजा टूटा फूटा था। बीच में बहुत से कटीले झाड़ झखाड़ भी खड़े थे। उनमें से निकल कर मैं मस्जिद के बड़े दालान में जा खड़ा हुआ, तब देखता हूँ कि उसमें सैंकड़ों टूटे फूटे पत्थर और मूर्तियों के खण्डित आकार अस्त व्यस्त रूप में पड़े हुए थे। कुछ दो तीन पत्थर के पुरुषे खम्भे खड़े थे, जिन पर कोई यंत्र आदि जैसे खुदे हुए तथा कुछ अक्षर लिखे हुए थे। यों मैं जैन पुस्तकों की पुरानी लिपि को थोड़ा बहुत पढ़ सकता था। लेकिन वे अक्षर तो ऐसी लिपि में थे, जिनका मुझे कोई बोध नहीं था। मस्जिद के दालान में मैंने घूमकर देखा तो नीचे जमीन के फर्श पर ऐसे बहुत से पत्थर के छोटे बड़े टुकड़े दबाये हुए थे, जिनमें भी उसी प्रकार के अक्षरों में कई पंक्तियां लिखी हुई देखी।

मैं उसे देख दाख कर तपस्वी जी के साथ वापिस स्थानक आ गया। मेरे मन में कुछ ऐसे तर्क होने लगे कि इन अक्षरों में क्या लिखा होगा ? ये पत्थर ऐसे क्यों यहाँ जमाये गये होंगे—इत्यादि तर्क मन में उठे, पर उनका समाधान पाने का उस समय वहाँ कोई साधन नहीं था।

धार के उस स्थानक के पिछले भाग में, जो खुला बाड़ा था, उसमें बहुत सी बड़े आकार की कुछ जैन मूर्तियां पड़ी हुई थी। उनमें से कोई कोई तो तीन तीन चार चार फुट जितनी ऊँची थी कुछ मूर्तियां काले पत्थर की थी। कुछ मूर्तियां श्वेत पत्थर की थी। पर ये सब प्रायः खण्डित थी। पूछने पर मालूम हुआ कि उस स्थानक के नजदीक ही कोई अच्छा पुराना जैन मन्दिर था, जो टूट फूट गया और जिसके पत्थर आदि तो लोग उठा उठा कर ले गये और अपने मकानों आदि के बनाने में उनको काम में ले लिया। वे मूर्तियां जो इस मन्दिर में पड़ी हुई थी, उनको कुछ भाइयों ने उठवा कर उस स्थानक के पीछे वाले बाड़े में लाकर रख दी। बहुत वर्षों से ये मूर्तियां यहाँ पड़ी हुई हैं।

धार में हम लोगों के सम्प्रदाय वाले काफी जैन भाइयों की बस्ती थी। परन्तु मुझे यह नहीं ज्ञात हो सका कि उस नगर में कोई जैन मन्दिर भी है और उसको मानने वाले मन्दिर-मार्गी भाइयों के भी कुछ घर हैं। कोई महिना भर हम धार में रहे और फिर वहाँ से बिहार कर दिया। कई गांवों में घूमते फिरते हम रतलाम गये। रतलाम में जैन भाइयों का काफी बड़ा समुदाय रहता है। वहाँ पर एक अच्छा बड़ा पुराना धर्म स्थानक भी है। उस स्थानक में एक वृद्ध साधु-जिनके साथ दो तीन शिष्य भी थे, कुछ वर्षों से उसी स्थानक में स्थिर-वास होकर रह रहे थे। ये साधु-जिस सम्प्रदाय के तपस्वीजी केशरीमलजी थे—उसी सम्प्रदाय के वे भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे । वह सम्प्रदाय–धर्मदासजी का सम्प्रदाय–इस नाम से स्थानकवासी सम्प्रदाय के अन्यान्य सम्प्रदायों में प्रसिद्ध था ।

उन वृद्ध साधु का नाम तो मैं भूल गया हूँ, पर उनके मुख्य शिष्य श्री नन्दलालजी नामक थे। जो उस सम्प्रदाय में अच्छे प्रतिष्ठित साधु समझे जाते थे। ये नन्दलालजी महाराज तपस्वी जी केसरीमलजी की अपेक्षा कुछ अधिक ज्ञानवान थे। इनके पास भी प्रायः मेरी उम्र वाला एक नव दीक्षित बाल शिष्य था और संयोग से उसका नाम भी किशनलाल था वह एक ब्राह्मण का ही लड़का था और कुछ बुद्धि से भी चंचल था। मेरे से पहले शायद एक डेढ़ वर्ष पहले उसने दीक्षा ली थी । इस प्रकार रतलाम के उस धर्म स्थानक में धर्मदासजी सम्प्रदाय के हम ८, १० साधु इकट्ठे हो गये थे ।

रतलाम में जाने पर मुझे यह ज्ञान हुआ कि स्थानक वासी सम्प्रदाय में छोटे बड़े साधुओं के अनेक सम्प्रदाय हैं । रतलाम में धर्मदासजी के सम्प्रदाय का मानने वाले भाइयों की अपेक्षा एक अन्य साधु महाराज को मानने वाले जैन भाइयों की संख्या कुछ अधिक थी । इन साधु महाराज का नाम पूज्य श्री लालजी था। मालवे के और मेवाड़ के अनेक गांव में इनके काफी भक्त लोग थे। इनके समुदाय के साधु लोग उन पुराने धर्म स्थानकों में नहीं ठहरते थे। उनका मन्तव्य था कि वे धर्म स्थानक पुराने जमाने में श्रावकों ने साधु संतों के ठहरने के लिये बनाये हैं—इसलिये ये स्थानक सावद्य कर्म के पोषक हैं । अतः इन धर्म-स्थानों में उतरने से साधुओं को सावद्य कर्म का पाप लगता है । इत्यादि कुछ बातें पहली ही बार मेरे सुनने में आई। कहते हैं उस सम्प्रदाय वाले श्रावकों ने अपने धर्म ध्यान आदि करने के लिये जो–नये मकान बनाये उनका नाम उन्होंने पौषध शाला ऐसा रखा । जहाँ कहीं ऐसा पौषध शालाएँ थी उनमें उक्त पूज्य श्री लालजी के अनुयायी साधु सत ठहर सकते थे । स्थानक के नाम से प्रसिद्ध पुराने स्थानों में वे नहीं ठहरते थे ।

रतलाम में हम लोग कुछ थोड़े ही दिन ठहरे और वहां से फिर बड़नगर आदि गांवों में विचरते रहे। मैं धीरे धीरे अपना दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन करता रहा और साथ में कुछ थोकड़े भी कंठस्थ करता रहा । यों गर्मी के चार महिने व्यतीत हुए और आषाढ़ महिने में हम वापिस धार पहुँचे । चौमासा धार में करना निश्चित होगया था । इसलिये हम धार में आकर चतुर्मास के निमित उसी स्थानक में ठहर गये ।

मेरा दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन पूरा हो गया था। अर्थात् वह पूरा सूत्र मैंने कंठस्थ कर लिया था और पढ़ा हुआ सूत्र विस्मृत न हो जाय इसके लिये उसकी आवृत्ति हमेशा की जाती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । इसके लिये रात्रि के उत्तर भाग के दो तीन घंटे निश्चित किये थे रोज प्रायः तीन बजे मैं अपने बिछौने में-जिसको जैन साधु संथारा कहते हैं-उठ बैठता था और धीरे धीरे पढे हुए सूत्र के पाठ का स्मरण किया करता था । बाल्यावस्था थी। कुछ निद्रा का जोर भी रहता था। लेकिन नियमित रात्रि के दो तीन घंटे पढ़े हुए ज्ञान को आवृत्ति करना भी आवश्यक था । अतः वैसा क्रम चलता रहा । कभी नींद अधिक आती थी तो मैं खड़ा होकर वह पाठ स्मरण करने लग जाता था। इस प्रकार पिछली रात के दो तीन घंटे स्वाध्याय में नियमित रूप से व्यतीत करने का अभ्यास करता रहा ।

दशवैकालिक-सूत्र का पाठ कंठस्थ हो जाने पर फिर नंदी सूत्र का पाठ पढ़ना शुरू किया। धार वाले उस स्थानक के रास्ते वाले दरवाजे के ठीक सन्मुख एक अच्छे सम्पन्न श्रावक का घर था। उस घर का मुखिया श्रावक अधिकतर धर्म ध्यान करने में अपना समय व्यतीत किया करता था । उसे बहुत से थोकडों का भी ज्ञान था जो समय समय पर मेरे पास आकर बैठ जाता था और मेरे लिये भी थोकड़ों के बारे में वह कुछ शिक्षक का काम किया करता था । वह श्रावक उन दिनों नियमित नदी सूत्र का पाठ किया करता था । रोज सुबह ७ बजे से लेकर ९, १० बजे तक वह सामायिक करके अपने घरके एक अलग कमरे में बैठ जाता था और नंदी सूत्र को पुरानी, हाथ की लिखी, पोथी पर से उस सूत्र का पाठ भी किया करता था ।

नंदी-सूत्र जैन आगमों में दशवैकालिक सूत्र के समान ही एक प्रधान आगम ग्रन्थ माना जाता है । यह ग्रन्थ प्राकृत गद्यमय है । इसका भी ग्रन्थ प्रमाण प्रायः ७०० श्लोक जितना है । इस सूत्र में मुख्य करके ज्ञान विषयक विचार ग्रन्थित है। जैन मान्यता मुताबिक ज्ञान के कितने प्रकार और भेद, उपभेद हैं उसका विस्तृत वर्णन इस सूत्र में हैं और इसका पाठ पढ़ना एक बहुत मांगलिक और कल्याणकारी समझा जाता है । वह श्रावक नियमित रूपसे प्रायः तीन घंटे इस सूत्र का पाठ किया करता था । बहुत बार पढ़ते रहने से प्रायः यह सूत्र उसको कंठस्थ हो गया था तथापि पाठ स्मरण के लिये अपने हाथ में हस्तलिखित पोथी के पन्ने रखकर मन ही मन वाचन किया करता था। उसकी देखा देखी मुझे भी धुन लगी थी। मैं भी उसी तरह रोज प्रातः ३ घंटे उसका स्वाध्याय करता रहा ।

प्रायः धार के उस चतुर्मास में मैं नियमित नंदी सूत्र का स्वाध्याय करता रहा । इससे धीरे धीरे वह मुझे बिना किसी क्रम के यों ही कंठस्थ जैसा हो गया था।

धार के उस चतुर्मास में मुझे ज्ञानाभ्यास के विषय में कुछ नया प्रकाश मिला । संयोग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षा-चतुर्मास के दिनों में वर्षा अधिक होने के कारण धार की उक्त कमाल मौला मस्जिद का मध्य-भाग का पुराना गुम्बज टूट पड़ा। उस गुम्बज के टूटने पर उसके अन्दर दीवालों में लगी हुई दो तीन पत्थर की बड़ी बड़ी शिलायें जमीन पर आ गिरी। उन शिलाओं पर बड़े सुन्दर अक्षरों में कुछ लेख से लिखे हुए थे। जिसकी खबर धार के राज्य कर्मचारियों को मिली तो उन्होंने उसकी सूचना तुरन्त अंग्रेजी सरकार के उस महकमें को पहुँचाई, जिस महकमें के अधिकार में उधर के स्टेटों के ऐसे पुराने मकान आदि के निरीक्षण करने का कार्य था। भारत सरकार द्वारा संगठित जो आरक्योलोजिकल डिपार्टमेन्ट कहलाता है—उसके वेस्टर्न सर्कल का मुख्य कार्यालय पूना में था। अर्थात् उस विभाग का हेड क्वार्टर पूना में था। धार स्टेट द्वारा कमाल मौला की मस्जिद में उक्त प्रकार से दो तीन बड़े शिला पट्ट जमीन पर गिर पड़े उसकी तहकीकात के लिये पूना के हेड क्वार्टर को सूचना देदी गई।

इस सूचना को प्राप्त कर पूना से डॉ० एस० आर भांडरकर नामक विद्वान उन शिला पट्टों को देखने के लिये धार आये।

डॉ. श्रीधर भांडारकर से मिलन और प्राचीन लिपि के ज्ञान की जिज्ञासा का उत्पन्न होना

डॉक्टर जिनका पूरा नाम श्रीधर रामकृष्ण भांडारकर था—वे संस्कृत के बड़े विद्वान् थे और उस समय पूना डेक्कन कॉलेज के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे। पूना के आरक्योलोजिकल वेस्टर्न सर्कल से उनका सम्बन्ध था। यों वे कई वर्षों से उस डिपार्टमेंट के तत्वावधान में वेस्टर्न सर्कल में आये हुए भिन्न भिन्न स्थानों में संस्कृत साहित्य की खोज का काम किया करते थे। डिपार्टमेन्ट की ओर से हर वर्ष दो तीन महिने इस कार्य के लिये व्यतीत करना उनको आवश्यक होता था। अनायास वे विभाग की ओर से तहकीकात के लिये धार की उस मस्जिद का निरीक्षण करने वहाँ पहुँचे। वे संस्कृत के विद्वान् तो थे ही और प्राचीन शिला लेखों की लिपि को भी अच्छी तरह पढ़ लेते थे। जब उन्होंने मस्जिद में मिले हुए उन शिला पट्टों को देखा तो वे बहुत आश्चर्य मुग्ध हुए और उन्होंने डिपार्टमेन्ट की ओर से उसके फोटो, रबिंग्स (छापे) आदि लेने का कार्य किया और उन शिला पट्टों को कोई कुछ नुकसान न पहुँचावें और अच्छी तरह सुरक्षित रखा जाय, इसके लिये स्टेट को उचित प्रबन्ध करने की सूचना दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यों प्रो० भांडारकर जब धार आये तो नगर में कोई मन्दिर मठ आदि हैं जिनमें कुछ पुराने ग्रन्थ देखने को मिले। यों वे धार का पुराना इतिहास अच्छी तरह जानते थे और राजा भोज आदि का इतिहास उन्हे अच्छी तरह ज्ञात था। उस मस्जिद के बारे में भी उनका पूरा ज्ञान था कि कब मुसलमानों ने भोज के बनाये हुए उस महान् सरस्वती मन्दिर को तोड़ फोड़ डाला और उसको कैसे नष्ट भ्रष्ट किया गया। इसका इतिहास तो उन्हें अवगत था। परन्तु उस मन्दिर को प्रत्यक्ष देखने का उन्हें कभी मौका नहीं मिला। पर उक्त प्रकार से जब वे वहाँ मस्जिद देखने आये तब उसमें लगे हुए अनेक टूटे फूटे शिलालेखो को भी पढ़ने का कुछ प्रयत्न किया। हो सका वहाँ तक उन लेखों को छापें आदि भी उन्होंने लिवाली। ये काम पूरा कर लेने पर उन्होंने शहर में कोई ऐसे स्थान हो जिनमें पुराने ग्रन्थ वगैरह देखने को मिले। किन्हीं राज कर्मचारी द्वारा उन्हें पता लगा कि धार में जैन लोगों का एक पुराना धर्म स्थानक है, उसमें साधु संत हमेशा आते जाते रहते हैं। तो उनको इच्छा हुई कि उस धर्म स्थानक में कोई पुराने ग्रन्थ देखने को मिल जाय, ऐसा सोचकर वे हमारे धर्म स्थानक में आये।

जैन साधुओं के आचार विचार से वे अच्छी तरह परिचित थे ही। स्थानक में आकर तपस्वी जी महाराज से नमस्कार किया और श्रावकों ने उनके बैठने के लिये कुछ आसन सा रख दिया था- जिस पर वे बैठ गये और पूछने लगे कि-महाराज आपके इस धर्म स्थानक में कोई पुराना लिखा हुआ जैन पुस्तकों आदि का संग्रह है क्या ? और आपके पास भी कोई पुरानी लिखी हुई पोथी आदि है? तपस्वीजी ने कहा—इस स्थानक में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है। उज्जैन में हमारा एक पुराना जैन धर्म स्थानक है, उसमें एक बड़ा लकड़ी का बक्सा है, जिसमें ऐसे कई पुराने लिखे हुए शास्त्र हैं। हमें उसके पूरे नामादि का कोई खास परिचय नहीं है। यहाँ तो हमारे अपने नित्य के पठन पाठन योग्य जो कुछ सूत्र आदि हैं, उनमें एक पुरानी लिखी हुई उत्तराध्ययन सूत्र की पोथी अवश्य है, जिसको आप देखना चाहें तो हम दिखादें।

प्रोफेसर ने कहा, हाँ अवश्य दिखाइये। तपसीजी ने अपने पास वाले वेस्टन को खोल कर उसमें से वह उत्तराध्ययन की प्रति डाक्टर के हाथ में रखी। उक्त डाक्टर ने तो ऐसी हजारों जैन प्रतियां देख रखी थी। तुरंत उसका अन्तिम पन्ना उठाया और उसकी अन्तिम पंक्ति पढ़ी तो उसमें लिखा हुआ था कि संवत् १५४५ में मंडप महादुर्ग में यह प्रति अमुक यति ने लिखी। यह पढ़कर उन्होंने पोथी वापस लौटाई और कहा- यह पोथी इतने वर्ष पुरानी है और मालवे के मांडवगढ़ में अमुक ने लिखाई और अमुक ने इसकी प्रतिलिपि की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुझे जिज्ञासा हुई और मैंने पूछा कि हमारे उज्जैन वाले संग्रह में कुछ ग्रंथ ऐसे कहे जाते हैं जिनको कोई पढ़ नहीं सकता। तब प्रोफेसर ने कहा— ऐसे हजारों ग्रन्थ विद्वानों ने पढ़ लिये हैं और पढ़ते जाते हैं। प्राचीन लिपि का ज्ञान करने के लिये कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं जिनको पढ़ने से भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राचीन लिपियों के पढ़ने का ज्ञान हो जाता है उदाहरण के तौर पर उन्होंने कहा कि अजमेर में एक ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने प्राचीन लिपिमाला नामक पुस्तक बनाई है। उस पुस्तक में ऐसी सभी प्राचीन लिपियों के पढ़ने की सामग्री संकलित की है बस इतनी बात कह कर वे उठ खड़े हुए। तब मैंने उनसे पूछा कि इस मस्जिद में आपने जो नये शिला लेख आदि देखे हैं। उनमें क्या लिखा हुआ है ?

प्रोफेसर ने हँसते हुए कहा राजा भोज के समय के लिखे गये कुछ महत्व के लेख आदि इन शिलाओं पर खुदे हुए हैं। हमारे लिये इतिहास की दृष्टि से यह बहुत बड़ी नई सामग्री है। हम लोग अब इसका अच्छी तरह अध्ययन आदि करेंगे और इन पर प्रकाश आदि डालेंगे ! यह कह कर वे स्थानक से रवाना हो गये।

उस दिन से मेरे मन में प्राचीन लिपियों का ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय और किस तरह इतिहास की ये महत्व की बातें समझी जाय, इसका ज्ञान प्राप्त करने की अन्तर में एक तीव्र जिज्ञासा ने बीजारोपण कर दिया।

वह मानो मेरे समग्र भावी जीवन का एक परम लक्ष्य रूप अन्तर में स्थिर होगया। ये लक्ष्य कब और कैसे कार्य रूप में परिणत होने लगा इसका वर्णन जीवनी के आगे के प्रसंगों में यथा स्थान आयेगा।

जैन साधुओं के आचार विषयक कुछ विचार

धार का वह चातुर्मास समाप्त होने पर हम लोगों ने अन्यत्र विचरने का उपक्रम किया। जिस सम्प्रदाय में मैं था और जिस समय का मैं यह वर्णन कर रहा हूँ, उस समय उक्त सम्प्रदाय के साधु संत चातुर्मास की समाप्ति होते ही उस स्थान से विहार कर देते थे और चतुर्मास के सिवाय, जैन साधु जिसको शेषकाल कहा करते हैं— किसी एक ग्राम में एक महिने से अधिक नहीं ठहरते थे। मैं जबतक उस सम्प्रदाय में रहा, प्रायः तब तक इस नियम का पालन बराबर होता रहा।

वर्तमान में स्थानकवासी साधुओं के आचार में भी बहुत शिथिलता दिखाई देती है। मैंने जिस प्रकार के आचार का पालन किया, वैसे आचार का पालन शायद ही वर्तमान समय के क्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानक वासी, क्या तेरह पंथी साधुओं में होता होगा। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के साधुओं में तो उस प्रकार के आचार के पालन की कोई कल्पना ही नहीं की जाती।

हमारे पास पहनने के लिये दो चोल पट्टे और ओढ़ने के लिये तीन चद्दर होती थी उससे अधिक वस्त्र नहीं रखते थे। सियाले में चाहे जितनी ठंड पड़ती हो उन तीन चद्दरों के सिवाय अधिक कोई वस्त्र नहीं रखते थे। नीचे बिछाने के लिये चोल पट्टे ही का रात्री में उपयोग किया करते थे। पढ़ने के लिये कुछ लिखित ग्रन्थ साथ में रखते थे, वे इतने ही प्रमाण में रख सकते थे जिनको एक कपड़े के वेस्टन में बांधकर स्वयं उठाकर ले जा सकते थे। ये पोथियों के दो वेस्टन होते थे जिनको इस प्रकार एक कपड़े के टुकड़े में बांध लिये जाते थे, जो चलते समय गले में डाल लिये जाते थे। इनमें का एक वेस्टन पीठ पर लटकता था। दूसरा वेस्टन आगे छाती पर लटका रहता था। इससे अधिक पुस्तकें कभी पास नहीं रखी जाती थीं। पुस्तक न किसी गृहस्थ के द्वारा मंगवाई जाती थी, न गृहस्थ के द्वारा किसी अन्य साधु के पास भिजवाई जाती थी। हम साधु न कभी किसी को चिट्ठी लिख कर डाक द्वारा कहीं भिजवाते थे। मैंने उस साधु वेश में कभी कोई पोस्ट कार्ड न देखा, न कभी किसी को कहीं लिखा। छपी हुई पुस्तक के पढ़ने का बहुत समय तक कोई मौका ही नहीं मिला। पुराने साधुओं के हाथ की लिखी हुई, कुछ थोकड़ों की प्रतियां मेरे देखने में आती तो मैं उसकी प्रतिलिपि करने का प्रयत्न करता। मैं कोशिश करने लगा कि जिस तरह की सुन्दर सुवाच्य लिपि में लिखी हुई प्रतिलिपि मेरे सामने है— उसी तरह के अक्षरों में मैं उसे लिखूं। इसके लिये धीरे-धीरे मैं अपने अक्षरों की आकृति को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करने लगा, परन्तु उस साधु सम्प्रदाय में पेन या पेंसिल रखने का अथवा उसका उपयोग करने का निषेध था। लिखने का साधन एक मात्र महाजन व्यापारी लोग जिस प्रकार की बरू की कलमों का उपयोग करते है, वैसी ही एक दो कलमें किसी श्रावक के यहां से मांग लेते और उनके द्वारा काली स्याही से लिखने का काम किया जाता। परन्तु वह स्याही कैसी होती थी इसका भी मनोरंजक वर्णन है।

चीनी मिट्टी की उस जमाने में मिलने वाली छोटी दवात प्राप्त कर उसमें किसी श्रावक की दूकान से स्याही मांग लाते थे। पर वह स्याही रात को अपने पास वैसे रूप में रख नहीं सकते थे। इसके लिये दिन में उस स्याही का उपयोग कर लेने के बाद रात में जो बच जाती तो उसको वैसी ही चीनी मिट्टी की छोटी सी प्याली में निकाल देते और उसे हवा में सूखने को रख देते। फिर दूसरे दिन सवेरे जब श्रावक के घर से कहीं शुद्ध निर्वद्य पानी बहोर लाते तो उसके कुछ बिन्दु उस रात में सूखी हुई स्याही में डाल कर उसे घोल कर लिखने योग्य बना लेते।

मैंने प्रयत्न कर थोड़े ही दिनों में अपने अक्षर अच्छे सुन्दर मरोड़ वाले बना लिये थे और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैंने धीरे धीरे पुराणे ३००–४०० वर्ष पहले के लिखे गये ग्रन्थों की लिपि के अनुरूप अपनी लिपि बनाने का अभ्यास कर लिया था। मैंने सबसे पहले कंठस्थ किये गये दशवैकालिक सूत्र की पूरी प्रतिलिपि अपने हाथ से लिखनी शुरू करदी। इसको पूरा करने में मुझे कई महिने लगे। प्रतिदिन १५,२० गाथाओं की प्रतिलिपि में इस प्रकार किया करता था। स्याही और बरू की कलम का उसी प्रकार हमेशा उपयोग किया जाता था जिसका सूचन मैंने ऊपर क पंक्तियों में किया है। स्याही के रखने की और रोज सुखाकर उसे फिर दूसरे दिन घोलकर लिखने योग्य बनाने में बड़ा श्रम सा लगता था। गृहस्थों की दुकानों पर स्याही की दवातें भरी रहती थी परन्तु हम अपने आचार के कारण उस स्याही का वैसा उपयोग नहीं कर सकते थे। मन में कुछ अटपटा सा लगा करता था परन्तु आचार के पालन में शिथिलता का भाव मनमें उत्पन्न होने देना पाप बंधन का कारण समझा जाता था। दो तीन बरस के आचार पालन से मनमें ऐसे संस्कार दृढ़ से दृढ़ होते गये थे। अन्य किसी संस्कार या विचारों के आगमन का उस समय हृदय में कोई द्वार नहीं था। अज्ञात श्रद्धा के कारण ही ऐसा कठोराचार का भी पालन मन पूर्वक होता रहता था।

एक गांव से दूसरे गांव में विहार करते समय कभी धूप से तप्त गर्मियों में चलने का अवसर आता था तो साथ में पीने के लिये जो कुछ पानी दोपहर की गोचरी के समय बहोर कर लाते थे, उसीका कुछ भाग रास्ते में चलते समय पीने के लिये साथ में एक पात्र में रख लिया करते थे। पर वह पानी, जिस गांव से निकलते थे उससे दो कोस से अधिक दूरी पर लेजाना निषिद्ध था। इसलिये चलते२ दो कोस (चार माइल) जब पूरे होने आते थे, तब किसी एक शुद्ध भूमि में बैठ कर पानी का अन्तिम उपयोग कर लिया जाता था। बाकी जो पानी कुछ बच जाता तो उसे वहीं शुद्ध भूमि पर परठ देते थे। फिर बाद में चाहे जितनी प्यास लगे तो उसे बुझाने का कोई प्रसंग नहीं रहता था। ऐसा तब अवसर आता था जब विहार का रास्ता कहीं ५ १० मील का लम्बा हो और शाम तक गन्तव्य स्थान पर न पहुँचा जा सकता हो। सूर्यास्त के बाद तो चलना सर्वथा निषिद्ध था। अतः सूर्यास्त के पहले ही किसी गांव में जाकर रात्रि निवास के लिये अपना स्थान खोज लेना आवश्यक होता था। ऐसा प्रसंग जब आता था, जब किसी गांव में जैन भाइयों को कोई बस्ती न हो। प्रायः मालवे में तो हमको ऐसे प्रसंग नहीं आये, परन्तु आगे चल कर, जैसा कि बताया जायगा, दक्षिण देश के प्रदेशों में विचरते समय हमको ऐसे अनेक अनुभव हुए।

धार से विहार कर हम लोग कई गांवों में होते हुए इन्दौर पहुँचे। इन्दौर मालवे का सुप्रसिद्ध नगर है वहाँ जैनियों की बस्ती भी काफी बड़ी है। स्थानक वासी सम्प्रदाय के आम्नाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले महाजनों के घर भी अच्छी तादाद में हैं। प्रायः ये महाजन उक्त धर्मदासजी की सम्प्रदाय के आम्नाय वाले थे, वहाँ पर मोलवी नाम की एक प्रसिद्ध गली है, जिसमें अच्छा सा बड़ा धर्म स्थानक बना हुआ है। हम लोग उसी धर्मस्थानक में जा कर ठहरे। शायद तपस्वीजी ने उस शहर में पहले दो तीन चतुर्मास किये थे। इसलिये शहर के सब श्रावक जन उनके अच्छे सुपरिचित थे। तपस्वीजी ने साधु मुन्नालालजी को उनके पुत्र बालक मोतीलाल के साथ कोई तीन चार वर्ष पहले उसी इन्दौर में दीक्षा दी थी। तपस्वीजी के साथ मैं उनका नव दीक्षित बाल साधु नये सदस्य के रूप में उस धर्मस्थानक में प्रविष्ठ हुआ।

इन्दौर बहुत बड़ा शहर है। इतना बड़ा शहर मैंने पहले कोई नहीं देखा था। शहर की भव्यता, विशालता आदि देख कर मुझे आश्चर्य युक्त मनोरंजन होता था।

इन्दौर शहर का वर्णन

उस शहर में पुराना राजवाड़ा के नाम से जो भव्य और विशाल राज महल बना हुआ है और वह ६ से ७ मंजिल जितना ऊँचा है। इतनी बड़ी इमारत मैंने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी, जिसे देख देख कर मेरा मन चकित हुआ करता था। उस पुराने राज-वाड़ा के पास ही होल्कर महाराजा ने अपना नया राजवाड़ा बनवाया था। जो उस समय नये ढंग के मकानों का एक नमूना समझा जाता था। उसके मैदान में और आसपास रात्रि की रोशनी के लिये गेस की बत्तियां लगी हुई थीं। जिन्हें लोग रात्रि के समय देखने आया करते थे। बिजली का प्रचार शायद उस समय तक नहीं हुआ था। स्थानक के एक भाग में से उस गेस की एक बत्ती दिखाई देती थी जिसको मैंने जिन्दगी में पहली बार देखा।

रोज प्रातः शौच के लिये हम शहर से बाहर कहीं दूर चले जाते थे और जहाँ हमें शौच क्रिया के लिये शुद्ध भूमि मिल जाती वहीं वह क्रिया कर आते। इस निमित्त हम शहर के अन्यान्य भागों में हो कर कभी किधर और कभी किधर, शौच के लिये दूर निकल जाते थे मुझे आसपास का प्रदेश देखने का शौक रहता था। इसीलिये साधुओं को आग्रह पूर्वक मैं ऐसे अन्यान्य भागों में ले जाने का प्रयत्न करता रहता था।

इन्दौर में जब हम थे तब मुसलमानों के मोहर्रम का उत्सव प्रसंग आ गया था। इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में मुहर्रम के दिन बहुत बड़े पैमाने पर ताबूतों का जुलूस बरसों से निकलता रहा है । राज्य की ओर से भी बहुत बड़ा ताबूत बनवाया जाता था । जिसके बनाने में आठ दस महिने तक कई कारीगर लगे रहते थे । राज्य का यह ताबूत बड़े राजशाही ठाठ से निकाला जाता था । इसे देखने के लिये आसपास के अनेक गांवों से हजारों लोग आते रहते थे। उस जुलूस में राज्य का, घुड़ सवार और पैदल मिलिट्री का पूरा लवाजमा, बड़ी सजधज के साथ निकलता था। उस समय देशी राज्यों में होल्कर राज्य की मिलिट्री पहले नम्बर में गिनी जाती थी उस मिलिट्री का पूरा दब दबा उस दिन दिखाया जाता था ।

मेरे पास कुछ युवक श्रावक लड़के आकर बैठते थे। उन्होंने कहा चेलाजी महाराज आप भी इस जुलूस को देखने चलें। मैंने कहा—भाई हम साधु ऐसे जुलूस देखने को कहाँ जायें? तब उनमें से एक नव युवक ने कहा कि हमारा घर उसी बाजार में है जिसके आगे हो कर वह पूरा जुलूस गुजरेगा। आप दो तीन घण्टे आकर हमारे घर की ऊपर की मंजिल में आकर बैठें और यह जुलूस देखें । सुन कर मेरा मन एक दम उत्कंठित हो गया और मैंने तपस्वीजी महाराज से कहा कि आप आज्ञा दें तो मैं आज उस ताबूत के जुलूस को अवश्य देखना चाहता हूँ । न जाने क्यों तपस्वीजी ने हाँ भर ली और कहा—तू और मोतीलालजी दोनों छोटे साधु चले जाओ और देख आओ । सुन कर मोतीलालजी के पिता साधु मुन्नालालजी बोले-महाराज मुझे भी आज्ञा हो तो मैं इन दोनों बाल साधुओं के साथ चला जाऊँ । तपस्वीजी ने हाँ भरली।

हम जल्दी जल्दी आहार पानी करके उस युवक के साथ उसके घर पर चले गये। उस बाजार में हजारों लोग सुबह से ही ठठ्ठ जमे हुए थे। इन्दौर के सरकारी ताबूत का जुलूस देखना उस इलाके में एक प्रसिद्ध प्रसंग समझा जाता था। हम लोग श्रावक के घर पहुँच कर उसकी दूकान की ऊपर वाली मंजिल में खिड़कियों के पास बैठ गये। धीरे धीरे जुलूस के आने की हल चल बढ़ने लगी । हजारों लोग इधर उधर दौड़ धूप कर रहे थे। इतनी बड़ी मानव मेदिनी और की ऐसी चहल पहल मैंने जिन्दगी में पहली बार देखी जिसमे मेरे मन का कुतूहल भी इसी तरह उछल कूद करने लगा ।

कोई दो बजे के लगभग जुलूस की अगवानी आने लगी पहले मुसलमानों द्वारा बनाये गये अनेक छोटे बडे ताबूत निकलने शुरू हुए । उसके पीछे मुख्य मस्जिद में बनाये गये ताबूत की सवारी आई, उसके साथ हजारों मुसलमान तरह तरह के खेल कूद करते हुए चल रहे थे। अनेकों के हाथों में नंगी तलवारें थीं और वे इन्हें इस तरह से घुमाते जाते थे कि जिसे देख कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन में भय भी उत्पन्न हो जाता था। नंगी तलवारों के अनेक खेल वे करते जाते थे। उस ताबूत के पीछे सरकारी ताबूत का लवाजमा आना शुरू हुआ। सबसे आगे घुड़ सवारों की एक पल्टन थी। जिसके आगे उसी पल्टन का मिलिट्री बेंड भी घोड़ों ही पर बज रहा था। मिलिट्री का यह बैंड कोई ७०, ८० आदमियों का बड़ा काफला था। बैंड के पीछे घुड सवारों की पल्टन थी जो अच्छी सज धज के साथ चल रही थी। गिनती की तो याद नहीं पर कम से कम २ हजार घुड सवार उसमें होंगे। घुड सवारों के पीछे पैदल सिपाहियों की टुकड़ियां थीं जो अलग अलग रिसाले के रूप में प्रसिद्ध थीं। हरेक रिसाले का अपना बड़ा बैंड था जिसमें भी ६०, ७० जवान थे। मिलिट्री के ये जवान तरह तरह की पोशाकों में सजे हुए थे। इस तरह एक के बाद एक मिलिट्री के पैदल रिसाले चलते गये। कहा जाता था कि उस जुलूस में १० हजार पैदल जवान सम्मिलित होते थे।

अन्त में वह सरकारी ताबूत आया जो चार पाँच मंजिल जितना ऊँचा था और हजारों रुपयों की लागत से वह बनाया गया था। उसे देख कर मुझे लगा कि जीवन में मैंने आज कोई नया आश्चर्य जनक दृश्य देखा है। जिसकी कल्पना इसके पहले मुझे कभी नहीं हुई थी। प्रायः संध्या समय होने आना आया था और जुलूस के खत्म होते ही हमलोग अपने स्थानक में चले आये और फिर कुछ आहार पानी का समय था, उसे निपट लिया और सायंकाल का प्रतिक्रमण करने बैठ गये।

प्रायः एक महीना जितना समय इन्दौर में व्यतीत कर हमने देवास नगर की तरफ प्रस्थान किया।

देवास का परिचय

देवास नगर भी धार की ही तरह मालवे का एक छोटा सा स्टेट था। वहां का राजघराना मराठे पंवार (परमार) वंश का था। यों यह स्टेट पेशवाओं के समय मराठों के अधिकार में आगया था। पहले मालवे के राजपूत लोगों के अधिकार में था। यों मालवे के ग्वालीयर, इन्दौर, धार, देवास आदि कई छोटे बड़े स्टेट पेशवाओं और मराठों के राज्यकाल के दरम्यान बने थे।

देवास छोटा सा ही स्टेट था। इसके अधिकार में आसपास के दस बीस गांव होंगे स्टेट का बँटवारा कोई दो तीन पीढ़ियों पहले, दो भागों में हो गया, जिसको वहां के लोग छोटी पांति और बड़ी पांती के नाम से पहचानते थे। खुद देवास नगर भी इस प्रकार दो पांतियों में बंटा हुआ था। आधे नगर पर छोटी पांती का अधिकार था, आधे नगर पर बड़ी पांती का। स्टेट की हैसियत के मुताबिक कुछ मिलिट्री के और कुछ पुलिस के जवान भी रहते थे। इन्दौर से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलने के बाद कुछ गांवों में होते हुए हम देवास पहुंचे। वहां के जैन भाई भी धर्मदासजी के सम्प्रदाय के आम्नाय वाले थे।

नगर के मध्य में छोटा सा राजवाड़ा भी था, जिसमें राज्य के कर्ताहर्ता रहा करते थे उसी राजवाड़े के सामने एक जैन महाजन का नया सा मकान बना हुआ था : उसके ऊपर की मंजिल में हम साधुओं को ठहराया गया। शायद वहां कोई धर्मस्थानक नहीं था। तपसी जी उस नगर में कई बार आते जाते रहे थे। इसलिये ग्रामवासी सभी श्रावक भाई बहिन उनके अच्छे सुपरिचित थे। पहले वे कभी वहां गये थे तब उनके साथ उनके बड़े शिष्य केवल अचलदास जी ही थे। अबकी बार वे हम मुन्नालालजी आदि तीन नये शिष्यों के साथ वहां पहुंचे थे इसलिये गाँव के पुराने श्रावकों को अपने गुरु सम्प्रदाय की दृष्टि से कुछ आनंद सा हुआ। जिस मकान में हम ठहरे थे उसके सामने ही राजवाड़े का आगे का विशाल-चौक सा था। जिसमें राज्यकर्ताओं की सवारी की बग्गियां वगैरह पड़ीं रहती थीं। उस समय मोटरें आई नहीं थी। स्टेट के मालिक अथवा घराने की स्त्रियां कहीं बाहर जाती तो दो घोड़ों की बग्गियों में बैठकर जाती आती रहती थीं।

राजवाड़े के मुख्य दरवाजे पर दो बंदूकधारी संतरी सदा तैनात रहते थे। सुबह के समय नियमानुसार स्टेट के जितने भी मिलिट्री और पुलिस के जवान नगर में रहते थे —उन सबकी आधे घंटे तक कवायद होती थी। तीन चार बिगुल वाले और दो एक ढोल वाले जवान मिलकर बैंड का काम किया करते थे। मकान में बैठा बैठा यह दृश्य मैं कुतूहल के साथ देखा करता था। क्यों कि ऐसी परेड आदि का देखने सुनने का मुझे कभी कोई प्रसंग नहीं मिला था। दिन में मैं अपना प्रतिलिपि का कार्य नियमित रूप से करता रहता था।

एक दिन दोपहर को एक अच्छे से संस्कारी दिखने वाले भाई तपसी जी महाराज के दर्शन करने के निमित्त आये, वे वहां के एक धनिक कुटुम्ब के मुखिया थे। मालूम हुआ कि ये देवास के रहने वाले है —लेकिन इन्दौर में वकालत करते हैं। वे अच्छे प्रसिद्ध वकील थे। प्रसंगवश देवास आये हुए थे और सुनकर तपसी जी महाराज के दर्शन करने चले आये। सामान्य रूप से वंदन वगैरह किया और तपसीजी ने तो इनको धर्म ध्यान आदि के विषय में पूछा तो उन्होने कहा— महाराज हम लोग तो वकालत का काम करते हैं, इसलिये सामयिक आदि और कोई धार्मिक क्रियाएं करने का हमें अवसर नहीं मिलता। हां जरूर साहित्य के पढ़ने का मुझे शौक है और मैं उसे पढ़ता रहता हूँ। अभी कुछ दिन पहले से मैं एक अंग्रेजी भाषा की पुस्तक पढ़ने लगा हूँ और यही पुस्तक मेरे हाथ में है। यह पुस्तक विलायत में छपी हैं और इसमें अपने धर्म के उत्तराध्ययन और कल्पसूत्र के अंग्रेजी भाषा में किये गये अनुवाद है। इस अनुवाद का करने वाला एक बहुत बड़ा जर्मन विद्वान है —जो प्राकृत भाषा और जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों का बड़ा विद्वान है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में जैन-धर्म की प्राचीनता के बारे में बड़े विस्तार से लिखा गया है। जिसका हम लोगों को कोई ज्ञान नहीं है। हमारे साधु लोग भी इन बातों को बिल्कुल नहीं जानते। मुझे कुछ शौक होने से मैं इनको जानने का प्रयत्न कर रहा हूं।

इस पुस्तक की प्रस्तावना में कई बातें ऐसी लिखी गई है जिनके विषय में जैन लोगों का कुछ विचित्र ख्याल हो सकता है। मैं पास ही में बैठा-बैठा अपनी प्रतिलिपि का कार्य कर रहा था। परन्तु उनकी बातें ध्यान से सुन रहा था उस समय तक मुझे जो कुछ थोड़ा सा जैन शास्त्रों का ज्ञान हो गया था -उनकी बातें सुन कर मुझे कुछ उस विषय में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई; परन्तु तपसीजी के मन में वैसी कोई जिज्ञासा नहीं थी। उन्होंने उस भाई को इतना ही कहा कि हम साधु लोग तो अपने शास्त्रों के स्वाध्याय के सिवाय अन्य किसी प्रकार का पठन-पाठन आदि नहीं करते, इत्यादि सुनकर वे भाई नमस्कार करके चले गये।

मेरे मन में उस भाई की बात से एक नये संस्कार ने अज्ञात भाव से बीजारोपण कर दिया कि मुझे ऐसी बातों का ज्ञान प्राप्त करने का अपने जीवन में प्रयत्न करना चाहिये। इसा बीजाकुर ने भविष्य में मेरे अभ्यास और अध्ययन की इच्छा ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया।

कुछ दिन देवास में ठहर कर हम लोगों ने उज्जैन की तरफ विहार किया और आने वाला चौमासा उज्जैन में बिताने का निश्चय हुआ।

उज्जैन में चातुर्मास—

उज्जैन मालवा देश की प्रसिद्ध प्राचीन राजधानी है। उज्जैन का प्राचीन इतिहास भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास में बड़ा महत्व का स्थान रखता है। यद्यपि मुझे इन बातों का उस समय कोई ज्ञान नहीं था। तथापि लोगों के मुख से किंवदंतिया सुनने में आई थीं। विक्रम राजा, राजा भरतरी, हरी, तथा खापरिया चोर की कई लोक कथाएं उस प्रदेश में प्रचलित थीं। उज्जैन ही में एक दफा भयंकर कोई देवी प्रकोप हुआ, जिसके कारण पुराना सारा शहर धूल की वर्षा में दब गया और उसके अवशेष आज भी वर्तमान उज्जैन नगर से कुछ दूरी पर शिप्रा नदी के तट पर दिखाई पड़ते हैं। लोग उसे धूलकोट वाले स्थान के नाम से पहचानते हैं।

इसी तरह शिप्रा नदी के तट पर महाकालेश्वर का प्राचीन शिव मंदिर है —जिसके दर्शन के लिये भारत वर्ष के कौने कौने से हजारों हिन्दू यात्री प्रतिवर्ष आते रहते हैं। महाकालेश्वर का यह शिव मंदिर, काशी विश्वनाथ के शिव-मंदिर के समान ही पूजनीय माना जाता है। बारह वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में एक बार कुम्भ का महा मेला भी इस मंदिर के निमित्त उज्जैन में लगता है इस महा पर्व के अवसर पर लाखों यात्री भारतवर्ष के कोने कोने से आते हैं और हजारों साधु, संत, बाबा, जोगी, खाखी, वैरागी, उदासी, सन्यासी, आदि त्यागी कहलाने वाले साधु संतों की भी जमातें इकट्ठी होती हैं।

महाकालेश्वर के मंदिर के पास ही ६४ योगनियों का प्राचीन मंदिर है। जो अब प्रायः भग्नावस्था में है। ६४ योगनियों को विक्रम राजा ने प्रसन्न की थी। जिसकी अनेक कहानियां लोगों में प्रचलित है।

विक्रम राजा की चौपई नामक एक पुराना कोई ३०० वर्ष पहले रचा गया देशी भाषा का पद्यमय कथा प्रबन्ध मैंने पढ़ा था। इन बातों के कुछ संस्कार मन में जमे हुए थे। इसलिये उज्जैन को देखने की मेरी अभिलाषा थी।

उज्जैन तपसीजी के सम्प्रदाय का मुख्य स्थान था। इस सम्प्रदाय के आद्य माने जाने वाले साधु श्री धर्मदासजी बहुत समय तक उज्जैन में रहे थे और उनके भक्त श्रावकों का वह मुख्य स्थान था। तपसी जी के गुरु श्रीरामरतनजी जो अपने समय में सम्प्रदाय के एक अच्छे संत माने जाते थे। उनकी वृद्धावस्था का अधिक समय उज्जैन ही में व्यतीत हुआ था। उज्जैन की सुप्रसिद्ध लूण मंडी नामक गली में सम्प्रदाय का प्राचीन धर्मस्थानक बना हुआ है। इसी धर्मस्थानक में जाकर हमने निवास किया, और वह पूरा चातुर्मास वहां व्यतीत किया।

उज्जैन के एक उदार-चेता नगरसेठ का वर्णन....

उज्जैन में काफी जैन श्रावकों की बस्ती है। उनमें कई अच्छे धनिक भी हैं। वहां पर एक सबसे अधिक धनाढ्य समझा जाने वाला एक जैन कुटुम्ब था जो इस समय तो सामान्य स्थिति में था। वह कुटुम्ब नवलक्खा के नाम से नगर में प्रसिद्ध था। उनकी हवेली उस समय भी विद्यमान थी। कहते हैं कि पेशवाओं के जमाने में एक बड़ा सरदार बहुत बड़ी फौज लेकर उज्जैन की बस्ती को लूटने आया। पेशवाओं के जमाने में यह आम मशहूर बात थी कि जब कभी उनके सरदारों के पास अपनी फौज को देने-खिलाने आदि का कोई अर्थ प्रबन्ध नहीं होता था, तो वे अपनी फौज को लेकर किसी ऐसे अच्छे नगर को, जहां धनिकों और व्यापारियों की अच्छी बस्ती होती थी, लूटने के लिए टूट पड़ते।

इस तरह वह पेशवा सरदार जब उज्जैन के लोगों को लूटने पहुँचा तो नगर निवासी महाजन सब एकत्र हुए और नगर सेठ जो नवलक्खा कहलाते थे -उनके पास पहुंचे। नगर पर आये हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकट का निवारण किस तरह किया जाय, इस विषय में नगर-सेठ की प्रमुखता में विचार विनिमय हुआ। उस समय ग्रामों पर तथा नगरों पर आने वाले ऐसे संकटो का सामना करने के लिये नगर के जो महाजनों के मुखिया होते थे, वे ही एक परामर्श के लिये आधारभूत होते थे ।

उज्जैन के उन नवलक्खा नगरसेठ ने महाजनों से कहा कि मैं उस पेशवा के सरदार की छावनी में जाकर सरदार से बातचीत करूं कि वे किसलिये उज्जैन पर फौज लेकर आये हैं ? तदनुसार नगर सेढ़ अपने कुछ विश्वस्त मुनीम आदि को साथ लेकर उस सरदार के पास पहुंचे । उस समय की प्रथानुसार नगरसेठ ने सरदार को कुछ नजराना भेंट किया । सरदार को मालूम हुआ कि यह उज्जैन का नगरसेठ है । उज्जैन की सारी प्रजा इनको बहुत आदर और सन्मान की दृष्टि से देखती है। ये जो कुछ प्रजा-जनों को सलाह देते हैं —वैसा प्रजा-जन व्यवहार करते हैं । सरदार जानता था कि उज्जैन के इस धनाढ्य नगरसेठ की सारे मालवा में बड़ी प्रसिद्धि और ख्याति है ।

इसलिये उसने नगर सेठ को बड़े सम्मान के साथ अपने पास गद्दी पर बिठाया और पूछा कि किसलिये आपका यहाँ आना हुआ ? जवाब में नगर सेठ ने कहा कि हमारे नगर के प्रजा-जनों ने सुना है कि आप उज्जैन को बस्ती को लूटने के इरादे से आये हैं । इसलिये सभी प्रजाजन भय से बड़े त्रस्त हैं और घरबारों को बंद कर अपने कुटुम्ब कबीलों को लेकर इधर उधर दूर के गांवों में भाग जाने की कोशिशें कर रहे हैं । नगर के महाजन और विशिष्ट प्रजाजनों ने एकत्र होकर मुझसे कहा कि आप सरदार के पास जा कर कोई रास्ता निकालें । इस दृष्टि से मैं आपके पास आया हूँ । आप क्या चाहते हैं ?

उत्तर में सरदार ने कहा कि कई महिनें हो गये । मेरी फोज को कुछ देने और खिलाने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है । इसलिये उज्जैन के धनिक लोगों से पैसा लेने आया हूँ ।

तब नगर सेठ ने कहा कि आपको फिलहाल कितने रुपयों की जरूरत है ? उस समय चादी और सोने के सिक्के ही देश में सब व्यवहार के लिये चलते थे । आज की तरह कागजी नोट नहीं थे। सोने चांदी के सिक्के, सेर और मणों में तोले जाते थे और अन्दाजन उनका मूल्य मान लिया जाता था।

सरदार ने कहा—मुझे ५० लाख रुपयों की जरूरत है सो आप पूरी करदें तो मैं वापिस चला जाऊँगा ।

नगर सेठ ने तुरन्त कहा—मैं दो चार दिन में उस रकम का प्रबन्ध कर दूंगा और आपके पास पहुँचा दूंगा । कृपा कर आप अपने सैनिकों को आदेश देदें कि वे नगर जनों को किसी भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार से न सतावें और न आस पास के छोटे गांवों में ही कोई लूट पाट का काम करें।

सुनकर सरदार ने कहा-आपकी बात मुझे मंजूर है और आप पर पूरा विश्वास है इसलिये मैं आपके किसी विश्वस्त जनों को जमानत के तौर पर बंदी बनाकर रखना नहीं चाहता।

फिर नगर सेठ सरदार को मुजरा आदि कर उठ कर अपनी पालखी में बैठकर वापिस नगर में चले आये और फिर सब महाजनों को एकत्र कर सरदार के साथ हुई बात चीत से उनको परिचित कराया।

महाजनों ने कहा-इतना रुपया इकट्ठा करने की तो इस नगर के प्रजाजनों की कोई शक्ति नहीं है।

सुनकर मन में गंभीर भाव से सोच कर नगर सेठ ने महाजनों से कहा कि-मैं नगर की स्थिति को अच्छी तरह जानता हूँ। पर नगर जनों पर यह महान जो संकट आया है, इसके लिये मुझे यथाशक्ति अपने नगर की रक्षा के लिये कर्तव्य बजाना मेरा धर्म है। सो मैं सोच विचार कर एक दो दिन में इसका कुछ प्रबन्ध करूँगा। फिर सेठ ने अपनी जो वृद्ध विधवा माता थी उसको जाकर एकान्त में यह सब बातें सुनाई। माता बड़ी धर्मनिष्ट और दयाशील थी। उसने कहा कि बेटा अभी तो अपने पास जो कुछ है उसको इकट्ठा कर उस सरदार के पास तुम अपने वचनों के अनुसार पहुँचा दो। मुझे यह तो मालूम नहीं है कि तुम्हारी दूकानों में अभी कितना रुपया उपलब्ध है, परन्तु अपने पूर्वजों ने मकान के निचले तहखानों में रुपयों से भरे हुए कुछ चरू गाड़ रखे हैं। उनको निकलवा लो। मुझे विश्वास है कि जितनी रकम देने का तुम वादा कर आये हो उतनी रकम उनमें से निकल आएगी।

सुन कर नगर सेठ ने माताजी को प्रणाम किया और कहा कि—जैसी आपकी आज्ञा है वैसा ही मैं करूंगा।

वे चरू हवेली के किस तहखाने में, कहाँ गड़े हुए थे इसका पता केवल इस वृद्ध सेठानी हो को था, नगर सेठ को भी इसका कोई पता नहीं था। सेठानी ने जाकर वह तहखाना बतलाया और तदनुसार सेठ ने उसे खुदवा कर वे गड़े हुए चरू बाहर निकलवाये।

उन रुपयों को बोरों में भरे गये तो साठ बोरे उनसे भरे। सेठ ने बोरों का वजन करके अंदाज लगाया तो प्रत्येक बोरे में एक लाख जितने रुपये मालूम दिये। सेठ बड़ा हर्षित हुआ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोचा कि मेरे वचन का पालन हो जायगा और इस तरह नगर निवासी जनों का संकट भी दूर हो जायगा।

दूसरे दिन साठ ऊँटों पर वे बोरे लादे गये और पूरे लवाजमे के साथ हजारों नगर जनों को साथ लेकर नगरसेठ उस सरदार की छावनी की तरफ चले और कुछ दूरी पर जा कर ठहर गये। सरदार को कहलाया कि उज्जैन नगर के सब महाजन और बड़े प्रजाजन आपकी मांग को पूरा करने के लिये आये हुए हैं। आप छावनी से बाहर आकर उन सब प्रजाजनों से मिलें और बातचीत करें।

सरदार तुरन्त उठकर अपने खेमें से निकल कर बाहर आया कुछ दो चार अंग रक्षकों के साथ महाजनों के सम्मुख आकर उनसे मुजरा आदि जो कुछ करने का रिवाज था वैसा करके बोला कि—आप उज्जैन के प्रजाजनों का दर्शन कर मैं बहुत आनन्दित हुआ हूँ।

तब प्रजाजनों के मुखियाओं ने हाथ जोड़कर कहा कि—सरदार सा० आपकी पैसे की मांग को पूरी करने के लिये हमारे नगर के सेठ साठ ऊँट भरकर रुपये लाये हैं। जिनको आप स्वीकार करें और आप इनको लेकर तुरन्त ही अपनी सेनामें ढंढेरा पिटावादें कि वे तुरन्त यहाँ से वापस लौट जाय। आपकी सेना जब तक रवाना नहीं हो जाती तब तक हम सब लोग यहाँ बैठे रहेंगे।

सुनकर सरदार ने तुरन्त अपनी सेना के कमाण्डर को हुक्म दिया कि—तुरन्त सब सेना तैयार होकर यहाँ से चलदे। सेना को जो कुछ खाने पीने को देना है वह मैं यहाँ से जाने के बाद अगले पड़ाव में दूँगा—इत्यादि रस्म पूरी हुई और सेना ने तुरन्त वहाँ से अन्यत्र कूच करदी। शाम को सब नगर जन सेठ साहब को साथ लेकर उनके घर आये और इस प्रकार नगर की रक्षा के लिये सेठने जो अद्भुत उदारता दिखाई—उसके लिये अभिवादन किया। दूसरे दिन सारे नगर में इसकी खुशी में बड़ा उत्सव मनाया गया।

नगर सेठ की यह कथा उज्जैन के पुराने वृद्ध श्रावकों के मुख से हमने सुनी। हम जब उज्जैन चातुर्मास में थे तब उन नगर सेठ की वह हवेली, सेठ के कुटुम्ब की आर्थिक अवनति के कारण निलाम की गई जिसको किसी भी नगर निवासी ने नहीं ली। कई दिनों बाद बाहर के किसी पैसे वाले ने आकर पानी के मूल्य में उसे खरादा। उस हवेली में शीशम की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लकड़ी के सब खम्भे और छत के पाट आदि थे । अर्थात् वह एक पुराने जमाने की बहुमूल्य वाली हवेली समझी जाती थी। मैंने इस हवेली को एक बार जा कर अपनी आँखों से देखा था ।

उज्जैन के चतुर्मास के प्रारम्भ होने पर तपस्वीजी महाराज अपने वर्षों के अभ्यासानुसार पचपन या साठ दिवस के उपवास करने आरम्भ कर दिये। जिनकी समाप्ति भाद्रपद में पर्युषण के बाद होती थी । तपस्वीजी की दीर्घ तपस्या की आसपास के प्रदेश में काफी प्रसिद्धि हुआ करती थी और जिसको जानकर सैंकड़ों श्रावक, श्राविकायें तपस्वीजी के दर्शन वन्दन करने निमित्त आते जाते थे। तपस्वीजी महाराज हमेशा सुबह घण्टा डेढ़ घण्टा व्याख्यान देते रहते थे। उनका शरीर अच्छा सुगठित था । ठिगना कद था । वर्ण से श्याम था । आवाज उनकी अच्छी थी, जिससे ढाल, चौपाई आदि गाने में उनको कोई कठिनाई नहीं होती थी । तपस्या के अन्तिम दिनों तक उनके शरीर में खास कोई थकावट के चिन्ह दिखाई नहीं देते थे। परिचित श्रावक जनों की जान पहचान वे काफी रखते थे। जिससे दर्शन वन्दन करने वाले भाई बहिनों को वे तुरंत पहचान लेते थे और उनके नाम गोत्रादि तथा कुटुम्बी जनों के बारे में भी अपनी जानकारी जता देते थे। इस तरह तपस्वीजी का परिचित श्रावक वर्ग काफी था और वे उसके दर्शनार्थ तपस्या के निमित्त सदा आया करते थे । उज्जैन के चातुर्मास में भी यही क्रम चलता रहा ।

पारणा के निमित्त अधिक संख्या में भाई बहिन उपस्थित हो जाते थे। तपस्वीजी महाराज का मैं सबसे छोटा शिष्य था और कुछ पढ़ने लिखने में अधिक रूचि रखने वाला था, इसलिये कई श्रावक लोग मुझ से भी परिचय करते रहते थे । मैं अपना सूत्रों को पठन का नियमित कार्यक्रम करता रहता था । उस समय तक मैंने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन सूत्र, सूय गड़ांग सूत्र का प्रथम श्रुत स्कंध-कठस्थ कर लिये थे । कोई पच्चीस, तीस थोकड़े भी जबानी याद कर लिये थे । कुछ सूत्रों की प्रतिलिपि का काम भी करता रहता था ।

उज्जैन के उस स्थानक में तपस्वीजी महाराज की सम्प्रदाय का कुछ पुराना ग्रन्थ संग्रह रखा हुआ था । जिसको मैं धीरे धीरे देखा करता था, इन ग्रन्थों में प्रायः सूत्र ही अधिक थे और जो देशी भाषा में लिखित टब्बार्थ वाले थे । ग्रन्थ बहुत पुराने नहीं थे । उनमें दो तीन ऐसे पुराने ग्रन्थ थे जो संस्कृत टीका के साथ थे । वे ग्रन्थ तीन सौ चारसौ वर्ष जितने पुराने थे । उनमें एक 'उववाई सूत्र' एक रायपशेनी सूत्र और एक अन्तगढ़दशा सूत्र की संस्कृत टीका समेत प्रतियां थी। एक अच्छी पुरानी बड़ी सी प्रति थी जो बहुत सुन्दर लिपि में त्रिपाठो के रूप में लिखी हुई थी। उसका शायद कुछ अन्तिम भाग नहीं था। उस प्रति के बांये हांसिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर सूड सु० ऐसा उसका नाम लिखा हुआ था । चूंकि मैं तब संस्कृत भाषा से सर्वथा अपरिचित था, इसलिये उसका विषय आदि क्या है, उसका मुझे कुछ ज्ञान नहीं हो सका । मैं केवल सूड० शब्द को पढ़ सका-आगे का जो सू० अक्षर था-उसको मैंने कल्पना से समझा कि यह कोई सूड० सूत्र नाम का खास ग्रन्थ है इसका अर्थ समझाने वाला वहां कोई नहीं था । इसलिये मैं बहुत वर्षों तक सूड० सूत्र को याद रखता रहा ।

इसी ग्रन्थ संग्रह के साथ एक पुराने लकड़ी के बक्से में कुछ छुपी हुई पुस्तकें रखी हुई मैंने देखी उनमें दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र की मूल पाठ वाली छपी पुस्तिकाएँ प्रथम बार मैंने देखी । कुछ थोकड़ों के संग्रह वाली भी एक छपी हुई पुस्तिका मेरे देखने में आई । मैंने उनको अपने पास रख लिया । उनमें एक पुराने लिथो प्रेस में गुजराती अक्षरों में छपी एक पुस्तक मैंने देखी, जिसका नाम 'पंच प्रतिक्रमणादि सूत्र' मैं पढ़ सका । उस सम्प्रदाय में प्रचलित केवल एक ही प्रतिक्रमण सूत्र का मुझे ज्ञान था । ये पंच प्रतिक्रमण कौन से हैं और इनका क्या विषय है इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं हुआ ।

उन पुस्तकों के साथ कुछ दो चार बड़ी छपी पुस्तकें भी मेरे देखने में आई । जिनके नाम—१. जैन तत्त्वादर्श, २. तत्त्व निर्णय प्रासाद, ३. अज्ञानतिमिर भास्कर आदि थे । ये पुस्तकें श्री आत्मारामजी उर्फ श्री विजयानंद सूरि की बनाई हुई थी । इन पुस्तकों को तो मैंने अपने उज्जैन वाले अन्तिम चौमासे में पढ़ी जिसका वर्णन उस प्रसंग में किया जायगा ।

उज्जैन के चातुर्मास में एक विचित्र घटना का अनुभव-

जिस चातुर्मास का मैं यह वर्णन लिख रहा हूँ, उसमें एक नव दीक्षित साध्वी के जीवन की करूणाजनक विचित्र घटना का अनुभव हुआ ।

उस समय उक्त सम्प्रदाय के अनुगामी साध्वी-वर्ग की चार पांच साध्वियों का वहां चातुर्मास था । उनका स्थानक भी उसी लूणमण्डी गली में, साधुओं के स्थानक से कोई पाँच दस मकानों के बाद था । मुख्या साध्वीजी अच्छी प्रौढ़ उमर वाली थी और उनकी तीन चार चेलियां थी । क्योंकि साध्वियां तपस्वीजी महाराज के गुरू सम्प्रदाय की थी, इसलिये उनका भक्तिभाव तपस्वी जी आदि साधुओं की तरफ होना स्वाभाविक ही था । इस नाते मुझ पर भी उनकी श्रद्धा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरी दृष्टि का होना स्वाभाविक था। ये साध्वियां हमेशा व्याख्यान सुनने के निमित्त तथा तपस्वी जी आदि साधुओं के वन्दन निमित्त हमारे स्थानक में आती जाती थीं। इनकी एक दो चेलियां जो छोटी उम्र की थीं उनकी पढ़ाई आदि के बारे में भी मैं कभी कुछ पूछता रहता था।

मेरा स्वभाव कुछ संकोचशील होने के कारण वे मुझ से अपने माता पिता आदि के बारे में कुछ पूछती तो मैं उसका जवाब नहीं देता था। उस बड़ी साध्वी ने एक दफा यों ही कहा कि आप तो हमारे गुरू आम्नाय के सम्प्रदाय में पूज्यजी बनेंगे इत्यादि। कभी कभी कोई बातें उनसे हो जाया करती थी। उन साध्वी के पास एक नव दीक्षिता किशोरी साध्वी थी, जिसने कोई छह आठ महिने पहिले ही दीक्षा ली थी। वह नव-दीक्षिता किसी ब्राह्मण की विधवा पुत्री थी। उसके पिता के घर में उसकी माँ विधवा थी और उसका एक आठ दस वर्ष का छोटा भाई था। उस बाई का विवाह होने के बाद थोड़े ही दिनों में उसका पति मर गया और वह कोई १५, १६ वर्ष की उम्र में विधवा हो गई।

पिता और श्वसुर कुल ग्रामवासी सामान्य निर्धन समझा जाने वाला ब्राह्मण कुटुम्ब था। यजमान वृत्ति से वे अपना निर्वाह किया करते थे। उक्त बाई के विधवा हो जाने पर श्वसुर वाले देवर जेठ उसका तिरस्कार और अवहेलना आदि करते रहे। जिससे वह त्रस्त हो कर अपनी माँ के पास चली गई और वहीं उसके पास रहने लगी।

कुछ दिनों बाद उक्त साध्वियां उस गांव में घूमती फिरती जा पहुँची। गांव में दस बीस श्रावकों के घर थे और वहाँ पर साध्वियों का आना कभी कभी हुआ करता था। इसलिये ग्रामवासी श्रावक जन उन साध्वियों की भक्तिभाव से सेवा उपासना करते रहते थे। साध्वीजी भाई बहिनों को धर्मोपदेश निमित्त कुछ ढाल, चौपाई आदि सुनाया करती थी।

उक्त ब्राह्मण कुटुम्ब की वे दोनों माँ बेटी भी साध्वीजी के पास, श्राविका बहिनों के साथ आती जाती रहती थी। साध्वीजी को उक्त ब्राह्मण बाई के साथ आने वाली किशोर वय की विधवा पुत्री के बारे में कुछ जानने की जिज्ञासा हुई। वह किशोरी बाई कुछ स्वरूपवान भी थी। बोल चाल में कुछ चपला भी थी और उसका कंठ भी अच्छा मधुर था। साध्वीजी को जब उसकी स्थिति का कुछ ज्ञान हुआ तो उनके मन में सहज लालसा उत्पन्न हो आई कि यदि यह बाई हमारी शिष्या बन जायें तो इसका भी जन्म सुधर जाएगा और हमको भी एक अच्छी शिष्या मिल जाएगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायः जैन साधु साध्वियों को ऐसे बाल वय वाले किशोर युवक और युवतियों को देख कर उनके मन में अपने चेला-चेली बनाने की लालसा उत्पन्न होती रहती है, ऐसे अनेक अनुभव हमें हुए हैं।

उक्त साध्वीजी ने धीरे धीरे अपने स्निग्ध प्रेम से उस किशोरी को साध्वी हो जाने की प्रेरणा की। उसकी माता को यह बात ज्ञात हुई तो उसने भी उस बारे में अपनी सहमति दिखाई। माता ने सोचा बेटी बाल विधवा है न सासरे में न पीहर में हो कोई रक्षा करने वाला है। यदि यह इस प्रकार इन साध्वीजी की चेली हो जाती है तो मेरी छाती पर का शाल मिट जायगा यों मैं कब तक इसका भरण पोषण करती रहूँगी। बेटी जवान होने पर न जाने किस रास्ते चढ़ जाय, अतः उसने भी बेटी को प्रेरणा दी कि तुम इन साध्वीजी की शिष्या बन जाओ। इससे तेरा जन्म सुधर जायगा और सारी जिन्दगी अच्छी तरह खान पान मिलता रहेगा इत्यादि।

खैर, उस किशोरी ने उसी गांव में साध्वी जी के पास सामान्य रूप से दीक्षा लेली और साध्वी का वेश पहन लिया। कुछ दिन बाद साध्वीजी वहाँ से विहार कर गई और कई गांवों में घूमती फिरती वे उक्त प्रकार से तपस्वीजी महाराज के कारण उज्जैन में चातुर्मास के लिये आकर रह गई।

गुरूणी साधवीजी अपनी नव दीक्षिता शिष्या की तरफ कुछ विशेष अनुराग दिखाने लगी, जिसकी ईर्ष्या अन्य चेलियों को होने लगी। वह दीक्षिता किशोरी चंचल स्वभाव की थी और कुछ तेज मिजाज वाली भी थी। अन्य साध्वियां जब उसकी तरफ कोई कटाक्ष भरी बातें करती तो वह उनका वैसा ही जवाब देती रहती थी। यों धीरे धीरे उनमें परस्पर वैमनस्य बढ़ता गया।

गुरूणीजी भी उसको वैसा न करने के लिये कुछ कठोर शब्दों में-उपालंभ भी देने लगी। यों कुछ दिन बीतने के बाद भाद्रपद महिने में सिर के केशों का लुंचन करने का समय आया।

जैन साधु साध्वियों के आचार में केशों का लुंचन करने की सबसे अधिक कष्ट-दायक कठिन क्रिया है। हर छह महिने में यह केश लुंचन क्रिया की जाती है। छोटी उम्र के बाल दीक्षितों के लिये भी इस आचार का पालन आवश्यक होता है। इस केश लुंचन के कष्ट से कई बाल दीक्षित साधु वेश छोड़ कर भाग जाते हैं। ऐसा अनेक बार होता रहता है। मैंने भी ऐसे व्यक्तियों को देखा है। मेरा प्रथम केश लोच हुआ तब मुझे भी यह बहुत कष्ट-दायक अनुभूत हुआ, परन्तु मैंने अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ मनोबल का और कुछ विचार की दृढ़ता का सहारा लेकर धीरे धीरे उस कष्ट को सहज भाव से सहन कर लिया । इसका कुछ वर्णन अगले प्रकरण में दिया जा रहा है ।

बात तो मैं उक्त किशोरी साध्वी के केश लुंचन की कर रहा हूँ । जब गुरुणी साध्वी जी ने उसके केशों का लोच करना चाहा तो वह बिलकुल इन्कार कर गई । यों उसके केश छह आठ महिनों के कारण काफी बड़े हो गये थे। दिखने में आज की नव तरुणियां जिस प्रकार बॉब कट कराती रहती है, वैसे ही उसके सिर के केश दिखाई देते थे । गुरुणी साध्वीजी ने उसके केशों का लोच करना बड़ी मुश्किल से आरम्भ किया तो दो चार चार की केश उखाड़ने के साथ ही वह चिल्ला उठती और उठकर खड़ी हो जाती । साध्वीजी को बड़ा धर्मसंकट मालूम दिया। वह किसी तरह केश लोच कराने को तय्यार नहीं हुई और इसके लिये उसे कुछ मारपीट भी सहनी पड़ी–इत्यादि कारणों से त्रस्त होकर वह गुपचुप भाग जाने की बात सोचने लगी । परन्तु जाय कहाँ ? सर्वथा व्यवहार से अबोध थी। कहीं कोई सहारा नहीं था । किसी प्रकार उसने एक गृहस्थ की कन्या के द्वारा अपने ससुराल में समाचार भिजवाया कि मुझे तुम यहाँ आकर कष्ट से छुड़ा ले जाओ । ससुराल में से उसका कोई देवर या जेठ दो चार दिन बाद वहाँ पहुँचा । उसको पता नहीं था कि मेरी भोजाई कहाँ पर है और किस अवस्था में है । इधर उधर पता लगाने पर मालूम हुआ कि लूणमण्डी में एक धर्म-स्थानक है जहाँ कुछ साध्वियां रहती हैं, वहीं वह होगी ।

कुछ साँझ हो गई थी। वह उस स्थानक के बाहर आया और पूछने लगा कि यहाँ कोई जैन साध्वी है। साध्वियों ने अन्दर सुना कि बाहर कोई पूछ रहा है। वह नव-दीक्षित साध्वी समझ गई कि मुझे कोई लेने आया है । परन्तु गुरुणीजी साध्वी तुरन्त रहस्य समझ गई और वह सोचने लगी कि यदि कोई पुरुष आकर इस शिष्या को यहाँ से ले जाने का प्रयत्न करेगा तो उसमें हमारी कुछ फजिहत होगी। इसलिये उन्होंने उस आदमी को किसी बहिन द्वारा कहला दिया कि यहाँ रात के समय किसी पुरुष का आना मना है। कल सुबह दिन को आना–इत्यादि ।

साध्वीजी ने सोचा कि अब इसे कहीं किसी दूसरी जगह छिपा देना चाहिये। जिससे कल कोई फजिहत का मौका न आवे यह सोच कर साध्वीजी ने हमारे स्थानक का एक बुड्ढा नोकर था उसको बुलवाया और कहा कि उस छोरी साध्वी का दिमाग कुछ खराब हो गया है इसलिये तुम इसको अभी बड़े स्थानक में चुपचाप ले जाओ और वहाँ पर स्थानक की तीसरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंजिल में एकांत सा खपरेल के नीचे का भाग है, उसमें ले जा कर रखो। कल इसकी व्यवस्था को जायगी। फिर उस नव-दीक्षिता को डरा-धमका कर उस बुढ़े नोकर के साथ बड़े स्थानक में भिजवा दी। नोकर ने भी उसे अच्छी तरह डराया धमकाया इसलिये वह डर के मारे चुप-चाप स्थानक में चली आई और स्थानक के पिछले भाग में जो ऊपर जाने वाला छोटा सा जीना था, उसमें होकर उसे वहाँ रख दिया।

वह अर्ध-मूर्च्छित सी हो गई थी। हमको तो इसका कुछ पता नहीं था। परन्तु शायद तपस्वीजी महाराज को इसका पता था। सारी रात वह बाई वहाँ उसी दशा में रोती हुई, सिसकती हुई पड़ी रही। दूसरे दिन सुबह साध्वीजी बड़े स्थानक में आई और ऊपर उसके पास गई, उसको कुछ मीठे वचनों से कहने लगी। परन्तु उसने हठ पकड़ ली और कहने लगी कि मुझे तुम अपनी माँ के पास भेज दो। मैं अब तुम्हारे पास किसी तरह नहीं रहना चाहती।

उधर दूसरे दिन वह आदमी पूछने आया तो उसे कह दिया कि वह तो रात ही को यहाँ से गुपचुप किसी के साथ भाग गई है, हमें कुछ भी पता नहीं है—इत्यादि।

उधर साध्वीजी ने आकर तपस्वीजी महाराज से सारा किस्सा कह सुनाया। तब मैंने तपस्वी जी से कहा कि जब इसकी इच्छा साध्वीजी के पास रहने की नहीं है तो इसे इसकी माता के पास भेज देना ही हमारा दयामय धर्म का काम है। इत्यादि कुछ बातें कह कर एक प्रौढ श्राविका को बुलाकर कहा कि तुम स्त्री के पहनने लायक कुछ कपड़े लाकर इस बाई को पहना दो और गुपचुप इसको स्टेशन पर ले जाकर टिकट कटवा कर गाड़ी में बिठा दो, जिससे यह अपने गांव, अपनी माँ के पास चली जाय। कुछ ५, ७ रुपये भी इसको दे दो।

तदनुसार वैसा किया गया और उस बाई को गाड़ी में बिठाकर रवाना कर दिया गया।

केश-लुंचन विषयक कुछ विचार-

यूं तो जैन साधुओं का आचार-धर्म अन्य सभी साधु सन्यासियों के आचार-धर्म से अधिक कठिन है। इसके पालन में बहुत कुछ आत्मसंयम और इन्द्रियदमन की आवश्यकता एवं अपेक्षा रहती है। जैन साधु की जीवन चर्या कैसी होती है-इसका कुछ सूचन हमने यथा स्थान किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और आगे भी करेंगे । यहाँ पर प्रसंग वश हम केश लुंचन के विषय में कुछ अनुभव जन्य विचार प्रदर्शित करना चाहते हैं ।

जैन साधुओं के आचारों में केश-लुंचन वाली क्रिया सबसे कठिन समझी जाती है । यों जैन साधु का जीवन एक प्रकार से सबसे अधिक सुखी जीवन है। जैन साधु का वेश पहन लेने पर फिर उसको न कोई कमाने खाने को चिन्ता रहती है, न किसी प्रकार के शारीरिक परिश्रम करने की आवश्यकता रहती है, न उसको अपने कुटुम्ब कबीले के पालन को ही कोई चिन्ता होती है। साधु-वेश पहन लेने के बाद उसको हमेशा अच्छा खान-पान मिलता रहता है—जो उसको भिक्षा द्वारा भक्त लोगों के यहां से सम्मान पूर्वक मिलता रहता है। वह सदैव सुबह शाम इच्छानुसार यथेष्ट भोजन करता रहता है। उसको पहनने ओढ़ने के लिये यथेष्ट अच्छे वस्त्रादि मिलते रहते हैं और रहने के लिये अच्छे मकानात ! वह अपनी इच्छानुसार देश पर्यटन करता रहता है और एक प्रकार से आरामदायक जीवन व्यतीत करता है । गृहस्थों के यहाँ जाकर खान पान आदि योग्य वस्तुएँ वह भिक्षा रूप में ले आता है। बीमारी आदि में भक्त लोग उसकी यथेष्ट परिचर्या करते रहते हैं और इन साधुओं में जो कोई अधिक योग्यता वाला होता है और व्याख्यान आदि कला में कुछ निपुण होता है तो समाज में उसको बड़ा सम्मान मिलता रहता है । कभी कभी ऐसे साधुओं के हजारों धनिक लोग भक्त भी बन जाते हैं ।

इस प्रकार के सुखी साधु जीवन में कभी कभी कई नव-दीक्षितों को जो कोई अधिक कष्ट दायक क्रिया का पालन करने का प्रसग उपस्थित होता रहता है वह केश-लुंचन विषयक क्रिया है ।

जैन साधु के शास्त्रोक्त आचार धर्म में यह विधान है कि साधु (साधु और साध्वी दोनों का अर्थ है) कम से कम वर्ष भर में एक बार अवश्य सिर पर उगे हुए केशों का लुंचन करे। अन्य धर्म के बाबा, सन्यासी आदि की तरह जटा बढ़ाने से उसमें जूं आदि की उत्पत्ति होती है और उसका परिहार करना हिंसा-सूचक कार्य है। इस कारण जैन साधु को अपने मस्तक के और पुरुष को दाढ़ी मूंछ के भी केशों का लुंचन वर्ष में एक बार तो अवश्य करना चाहिये । अन्य साधु सन्यासियों की तरह वह नाई या हज्जाम से केशों का मुण्डन या कर्तन करा नहीं सकते । क्योंकि वह गृहस्थ द्वारा कराना होता है जो साधु के लिये अनाचार रूप है । इस प्रकार साधु को केश लुंचन करना अनिवार्य होता है और उसका पालन जैन साधु सम्प्रदाय में कम से कम जहाँ तक मेरा ज्ञान है स्थानक वासी सम्प्रदाय के साधु वर्ग में तो अवश्य होता रहता था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु कई कच्चे पक्के नव-दीक्षित साधु इस कष्ट दायक क्रिया को सहन न कर सकने के कारण लाचार होकर साधु वेश का परित्याग भी कर देते हैं। इस प्रकार के कई उदाहरण मेरे अनुभव में आये हैं।

मेरा प्रथम लोच, धार वाले चौमासे में हुआ। इस समय मेरे केश काफी लम्बे हो गये थे। चौमासे में पर्युषण के पहले ही केश लुंचन कर डालने की प्रथा चालु है। हम तपस्वीजी समेत पाँच साधु थे जिसमें तीन तो बड़ी उम्र वाले थे और मैं तथा मोतीलालजी छोटी उम्र के थे। तपस्वीजी महाराज के सिर पर तो इने गिने बाल थे। अबलदासजी और मुन्नालालजी काफी बड़ी उम्र के थे और उनके सिर पर केशों का काई अधिक भराव नहीं था। लोच वाले दिनों में पहले उन तीनों बड़े साधुओं ने आपस में एक दूसरे ने अपना केश लुंचन कर लिया। अब बारी आई हम दोनों छोटे साधुओं की। मोतीलालजी मुझ से कुछ पहले दीक्षित हो गये थे इसलिये उनका दो तीन बार केश लुंचन हो चुका था। परन्तु जिस समय उनके केशों का लुंचन करने के लिये उनके पिता बैठे तो मोतीलालजी को अधिक कष्टानुभव करते हुए मैंने देखा। वे एक साथ मस्तक के सारे केशों का लुंचन करा नहीं सकते थे। कई दिनों में धीरे धीरे उनका केश लुंचन का कार्य समाप्त हुआ।

मेरा केश लुंचन करने को तपसीजी ने मुझे बिठाया तो मैं मन को कड़ा करके बैठ गया। तपसीजी ने अपने दो घुटनों के बीच मेरा सिर दबा लिया और वे राख भरी हुई अपनी चिमटी से मेरे सिर की चोटी के स्थान से दस दस बीस बीस बाल पकड़ कर उखेड़ने लगे। यूं तपसी जी लोच क्रिया करने में निपुण थे। उनका हाथ जल्दी जल्दी काम करता था और चिमटी में जितने बाल पकड़ लेते थे उनको उखाड़े बिना वे नहीं छोड़ते थे। कई साधु इस प्रकार केश लुंचन क्रिया में अच्छे निपुण होते हैं और उनके पास ऐसे कई नये साधुओं की लुंचन क्रिया कराई जाती है।

मुझे प्रथम बार की लूंचन क्रिया में काफी कष्टानुभव होता रहा था। परन्तु मैंने किसी प्रकार अपने कष्ट का भाव व्यक्त न होने दिया। तपसी जी आधे सिर का लोच किये बाद बोले कि जो अधिक दुख होता हो तो आज इतना ही कर लिया जाय। दो तीन दिन बाद फिर बाकी का लोच कर लेंगे।

मैंने सोचा कि बार बार ऐसा दुख मन में सहन करना —इसकी अपेक्षा एक बैठक में ही उसे पूरा कर लेना अच्छा है। मैंने तपसीजी को कहा आप इसी समय पूरा लोच कर डालें। कोई दो तीन घंटे में वह क्रिया पूरी हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद के वर्षों में तो मैं धीरे धीरे उस कष्ट क्रिया से अभ्यस्त हो गया था और मन में कुछ वैराग्य भाव भी दृढ़ होता गया। इस लिये उस बारे में मुझे अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं आई।

जब मैंने मूर्ति पूजक संवेगी मार्ग का साधुवेश परिधान किया तब भी यह लोचक्रिया होती रही। आगे चलकर तो मैं स्वयं अपना केश लुंचन अपने ही हाथों से कर डालता था। पर यह तो आगे की कथा का विषय है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैन साधुओं के आचार में केश लुंचन का एक सबसे अधिक कठिन आचार धर्म समझा जाता है और यदि इस आचार धर्म का पालन करने की अतिशयता का जोर न होता हो तो आज जितनी संख्या में जैन साधु, साध्वी दिखाई देते हैं उससे कहीं अधिक संख्या में साधु, साध्वी बनने को लोग तैयार हो सकते हैं --क्योंकि सामान्य रूप से जैन साधु के जैसा सुखी जीवन जीने का अन्यत्र दुर्लभ है।

महाकालेश्वर के मंदिर का दर्शन

उज्जैन में जो महाकालेश्वर का प्रसिद्ध मंदिर है, उसको देखने की एकबार मेरे मन में इच्छा हुई।

श्रावण महिने के प्रत्येक सोमवार को महाकालेश्वर के मंदिर से एक बड़ा जुलूस निकलता था और उसमें सरकारी बैन्ड पुलिस-पार्टी और घुड़सवार आदि का पूरा लवाजमा होता था। यह जुलूस उज्जैन के मुख्य मुख्य बाजारों में होता हुआ, वापस महाकालेश्वर के मन्दिर में जाकर समाप्त होता था। उज्जैन में उस समय ग्वालियर की सिंधियां-सरकार का राज्य था। मराठा राजशाही शिवभक्त होने के कारण ग्वालियर सरकार की ओर से महाकालेश्वर का यह उत्सव बड़े ठाठ से मनाया जाता था।

मैंने पहले जब भैरवी-दीक्षा ली थी, तब महाकालेश्वर के दर्शन कई बार किये थे परन्तु उस समय मंदिर आदि को ठीक तरह से देखने का कोई प्रसंग नहीं मिला।

मैंने यतिवर गुरु श्री देवीहंसजी से कुछ सुना था कि कल्याण मंदिर स्तोत्र, जिसको गुरुजी ने मुझे कंठस्थ करवाया था, उसके बनाने वाले सिद्धसैन दिवाकर आचार्य थे। उन आचार्य ने महाकालेश्वर के मंदिर में बैठकर इस स्तोत्र की रचना की थी और इसके कारण इस मंदिर में जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति प्रकट हुई। इसे जैन लोग आवंती पार्श्वनाथ नाम से पूजते रहे हैं। यह आवंती पार्श्वनाथ का जैन मंदिर भी, हमारे लूण मण्डी वाले धर्मस्थानक से नजदीक ही के एक मुहल्ले में था। परन्तु हम लोग कभी उस मंदिर में जाते नहीं थे, क्योंकि हमारे सम्प्रदाय में मूर्ति पूजा पाखण्ड स्वरूप मानी जाती रही है। परन्तु मेरे मन में यह कौतुहल रहा कि महाकालेश्वर मंदिर को जाकर अन्दर से देखें कि वह कैसा बना हुआ है। इस जिज्ञासा के कारण हम एकदिन मुन्नालालजी और मोतीलालजी के साथ महाकालेश्वर के मंदिर को देखने गये। मंदिर की कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब उसके मुख्य द्वार पर पहुँचे तो वहां बैठे हुए, ब्राह्मण पुजारी ने जरा कठोर स्वर से पूछा कि "ढूँढिये महाराज आप यहाँ क्यों आये हैं।" तब मैंने कहा कि–पुजारीजी हम मन्दिर को अन्दर जाकर देखना चाहते हैं। तब पुजारी बोला कि आप इस तरह नहीं जा सकते। पहले नदी में जाकर हाथ पैर धो आओ और बाद में आपकी बगल में जो यह झाड़ूसा है इसको यहाँ रखदो (हमारे पास लम्बी डंडी वाला जो रजोहरण था उसको उस पुजारी ने अवज्ञा से झाड़ू बतलाया) और मुँह पर यह पट्टी बाँध रखी है, उसको भी खोलकर यहाँ रख दो, फिर मन्दिर में जा सकते हो इत्यादि। पुजारी के ये वाक्य सुनकर हमको कुछ क्रोध हो आया, और हम वहाँ से वापस लौट आये।

महाकालेश्वर के इस मन्दिर को अन्दर से देखने का और जो तीर्थंकर स्वरूप शिवलिंग के दर्शन करने का प्रसंग तो मुझे कई वर्षों बाद प्राप्त हुआ, मैं अहमदाबाद के गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर के आचार्य पद का काम जब संभाल रहा था, तब उज्जैन में चातुर्मास रहे हुए स्व० प्रसिद्ध विद्वान् जैन मुनि श्री न्यायविजयजी ने मुझे आग्रह करके मिलने के लिए उज्जैन बुलाया था और मैं दो, तीन दिन वहाँ रहा था, तब महाकालेश्वर के मन्दिर के, चौंसठ जोगनियों के स्थान के तथा आवंतीपार्श्वनाथ के मन्दिर को देखने का भी अवसर प्राप्त हुआ।

उस समय मुझे महाकालेश्वर आदि के विशेष इतिहास का कोई ज्ञान नहीं था। उज्जैन के प्रति मेरा केवल इतना ही आकर्षण का भाव था कि वह विक्रम राजा की राजधानी थी। वह विक्रम राजा जिस क्षत्रिय वंश में मेरा जन्म हुआ है उस परमार वंश का बहुत बड़ा राजा था। उसने चौंसठ जोगनियों और बावन वीरों को प्रसन्न किया था इत्यादि, किंवदन्तियाँ मैंने सुन रखी थी। प्रसिद्ध लोक गीतों में जिस राजा भरथरी हरि का प्रसंग सुनने में आता रहा है। वह राजा भरथरी भी उज्जैन का राजा था इत्यादि।

चातुर्मास की समाप्ति पर हमने उज्जैन से प्रस्थान कर देवास होते हुए इन्दौर की ओर विहार किया।

उज्जैन से दक्षिण देश की ओर विहार

तपस्वीजी बहुत वर्ष पूर्व दक्षिण देश में विचरे थे जिस वक्त वे दक्षिण में विचरे थे उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्त उनके साथ में शिष्य परिवार नहीं था और वे अपने एक बड़े गुरूभाई के साथ उस प्रदेश में विचरे थे, तपस्वीजी के यह बड़े गुरूभाई जिनका नाम चम्पालालजी था, वे अधिकतर दक्षिण के अहमदनगर जिले में विचरते रहते थे ।

चम्पालालजी अच्छे व्याख्याता कहलाते थे । उनकी धर्मोपदेश देने की कला अच्छे प्रकार की थी । बहुत वर्षों से दक्षिण में ही विचरते रहने के कारण मराठी भाषा का उनका अभ्यास बहुत अच्छा हो गया था । मैंने जब उनको देखा तथा कुछ समय उनके पास रहने का भी प्रसंग आया तब वे मौटेतोर पर मराठी में ही व्याख्यान देते रहते थे । जैन श्रावकों के सिवाय और दूसरे दक्षिणी लोग भी उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए आया करते थे और उन व्याख्यानों में वे मौटेतौर पर तुकाराम और नामदेव जैसे महाराष्ट्रीय सन्तों के अभंगों और पदों को अच्छी तरह गा गा कर सुनाते और उन पर सुनने वाले लोगों का मनोरंजन हो उस तरह प्रवचन किया करते थे । इससे केवल जैन लोगों के अतिरिक्त मराठे, ब्राह्मण, पाटील आदि सभी वर्ण के लोग उनके प्रवचनों में ठीक संख्या में आते रहते थे । कभी कभी मामलतदार और गांव पाटील आदि कुछ सरकारी नोकर भी उनके व्याख्यान सुनने चले आते थे ।

तपस्वी केशरीमलजी उनका साथ छोड़कर जब मालवे में चले गए और उज्जैन में चातुर्मास किया वहां पर अचलदासजी नामक एक मारवाड़ी ओसवाल को दीक्षा देकर अपना प्रथम शिष्य बनाया । उसके बाद वे इन्दौर नगर में चातुर्मास रहे । वहाँ एक ओसवाल पिता पुत्र को अपने पास दीक्षित किया । पिता का नाम मुन्नालालजी था वे लगभग 45 वर्ष की उम्र के थे उनका घरभंग होजाने से उन्होंने अपने 11-12 वर्षीय पुत्र मोतीलाल के साथ दीक्षा ग्रहण की ।

जब मैंने 1959 में दिग्ठाण में दीक्षा ली थी, उसके बारह महिने पहले उन्होंने दीक्षा ली थी । मुन्नालालजी सामान्य पढ़े लिखे थे और कोई व्यवहारिक या दूसरा ज्ञान नहीं था । बालक मोतीलाल बिल्कुल पढा लिखा नहीं था । दीक्षा ग्रहण करने के बाद साधुओं की परिपाटी के अनुसार ज्ञान उपार्जन करने का शुरु किया था । बड़े शिष्य अचलदासजी ने दो-एक वष पूर्व दीक्षा ली थी मगर खास कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे. मैंने किन संयोगों और किस स्थिति में दिग्ठाण में दीक्षा ली थी, उसका वर्णन पहले लिखी गई जीवन कथा के अन्तिम पृष्ठों में दिया गया है ।

तपस्वीजी, केशरीमलजी के उक्त तीन शिष्यों से मैं कुछ अच्छी सी हिन्दी पढ़ और समझ सकता था । यति संसर्ग के कारण कुछ और भी स्तुती स्त्रोतों का पाठ जानता था । उन साधुओं को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपस्वीजी केशरीमलजी भी कुछ खास अभ्यासी नहीं थे, परन्तु लम्बे समय के दीक्षित होने से और उनके गुरू रामरतनजी जो समुदाय के एक प्रतिष्ठा पात्र साधु माने जाते थे उनके पास कितनेक सूत्रों और थोकड़ों जैसे भाषा प्रकरणों का ज्ञान प्राप्त किया था। साधुओं की परिपाटी के अनुसार अपना व्यवहार चलाने को दृष्टि से देशी भाषाओं में रचे हुए कुछ पुराने स्तवनों, स्वाध्यायो, ढालों, छन्दों वगैरह का भी परिचय प्राप्त किया था और चौमासे में या कुछ दूसरे स्थानों पर उपदेश सुनने के लिए आने वाले भाई बहनों के आगे ढ़ाल, चौपाई, चौढालीयें वगैरह को गा गा कर उसके उपर कुछ प्रवचन वगैरह करते रहते थे। थोड़े आगमों को भी भाषा के टबार्थों के सहारे समझते-समझाते रहते थे।

पर मैंने दीक्षा लेने के बाद 2-3 वर्ष क्या किया और किसका अभ्यास करने लगा, उसका वर्णन उपर दिया जा चुका है।

तपस्वी जी केशरीमलजी का विचार हुआ कि उनके पास हम जैसे तीन चार शिष्य हैं इसलिए सबकों साथ लेकर दक्षिण में रहने वाले अपने बड़े गुरु भाई उक्त श्री चम्पालालजी से मिलने जावें कारण कि चम्पालालजी के पास कोई खास शिष्य नहीं था। इस विचार से तपसीजी ने उज्जैन के चातुर्मास के बाद दक्षिण की ओर विहार करने का विचार किया और इन्दौर पहुंचे।

इन्दौर में महिने दो महिने रहने का प्रसग प्राप्त हुआ।

इन्दौर में मुन्नालालजी के भाई का विचित्र प्रसंग

इन्दौर में महिने दो महिने रहने का प्रसंग प्राप्त हुआ। मुन्नालालजी का छोटा भाई जो कुछ ज्यादा चालाक बनिया सा था वह मिलने के लिए आया। मुन्नालालजी ने उसको समझाया कि तुम भी हमारे साथ साधु हो जाओ, और अपन तीनों एक कुटुम्ब के समुदाय जैसे रहेंगे, वगैरह। उसकी विशेष चर्चा तो मैं नहीं करता परन्तु उसने दीक्षा लेने का बराबर दिखावा किया। इन्दौर के श्रावक जन जो तपस्वी केशरीमलजी के भक्त कहलाते थे, उन्होंने दीक्षा महोत्सव की भी तैयारी की, और हमेशा के रिवाजानुसार पांच सात दिन का उत्सव आदि का प्रसंग भी बनाया गया। एक दिन बड़ा जुलूस निकाल कर उसको स्थानक में ही दीक्षा दी गई। दीक्षा लेने के वक्त अनेक प्रकार के मूल्यवान वस्त्र भी इसको पहनाये गये। दीक्षा लेने के बाद जब उसने साधु के कपड़े पहन लिए और वे जो जरी वगैरह के कीमती वस्त्र उतार दिये थे, उनको श्रावकों ने उस समय गठड़ी में बाँधकर उस रात के लिए वहां उसी स्थानक के एक कोने में रख छोड़े थे ऐसा सोचकर कि कल जिसके वहां से ये कीमती कपड़े लाए गये हैं उसको वापस लौटा दिये जायेंगे।

वह भाई जिसने खूब ठाठ-पाठ से दीक्षा ली थी उस रात को हम सबके सो जाने के बाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारह बजे के करीब उठकर बैठा हुआ। उसका संथारा (बिछौना) उसके बड़े भाई मुन्नालालजी के पास ही करने में आया था। एक तरफ बालक मोतीलाल भी सोया हुआ था तपस्वीजी तथा अचलदासजी स्थानक के एक दूसरे कोने में सोये हुए थे। स्थानक में दो सीढ़िया थी, एक आगे से आने की और दूसरी पीछे से आने की, जिसके द्वारा श्राविकायें आती जाती रहती थीं। बारह एक बजे नवदीक्षित ने अपने बड़े भाई को जगाकर कहा– "भाई साहब मेरे पेट में खूब दर्द हो रहा है, मुझे टट्टी जाने की हाजत होरही है।" स्थानक में तो अंधेरा ही था, दिया बती का नामोनिशान भी नहीं था। इसलिए मुन्नालालजी ने कहा कि इस पिछली सीढ़ियों से नीचे उतर कर पास वालो जो गली है उसमें टट्टी हो आओ। मुन्नालालजी नींद में थे, वह भाई, अपने पास में रखे हुए जरी वगैरह के कपड़ों को संभालकर रखी हुई बड़ी सी गठरी को उठाकर अपनी बगल में दबाकर झट से पीछे की सीढ़ियों द्वारा नीचे उतर गया और पास वाली गली में होकर नौ-दो ग्यारह हो गया।

घंटा, डेढ़ घंटा बीत गया पर भाई वापस क्यों न आया उसकी फिकर में मुन्नालालजी उठे और प्रथम तो पिछली सीढ़ियों से नीचे उतर कर गली में इधर उधर देखने लगे कि भाई कहीं टट्टी जाने को बैठा है या नहीं? उन्होंने उसका नाम लेकर आवाज भी दी, मगर कोई उत्तर नहीं मिला तब उन्होंने आकर तपस्वीजी को जगाया और भाई के गुम हो जाने की बात कही। तपस्वीजी को जरुर बड़ा आघात लगा था उन्होंने हमें भी जगाया। परन्तु उनको इस बात की जानकारी तो तब हुई कि वह भाई वे सब कीमती वस्त्र उठाकर रवाना हो गया है।

वह जो स्थानक (उपाश्रय) था उसके नीचे के भाग में कोई रहता नहीं था। एक बुढ़ा नौकर जो कि साफ-सफाई करने के लिए रहता था, उसको जगाने, मैं आया। मगर उसने तो ठंडे कलेजे से उत्तर दिया कि महाराज मैं क्या जानूं? मैं ऐसी अंधेरी रात्रि में जा कर किसको जगाऊं, और कहूं वगैरह सुबह होने पर खबर निकलवाना। दूसरे साधुओं को क्या लगा होगा। उसकी तो मुझे खास कोई कल्पना नहीं आयी। परंतु मेरे मन में तो एक अघटित घटना सी हो गयी ऐसा महसुस हुआ, बिछौने में बैठे-2 नवकार मंत्र का जाप करने लगा, ऐसा कहने में आया था कि कोई अकल्पित घटना सी होती मालूम हो तो नवकार मन्त्र का जाप करते रहना चाहिये।

सुबह हुई हम सब साधुओं ने प्रतिक्रमण और पडिलेहणा वगैरह क्रियाएं कीं। इतने में स्थानक के उस नौकर ने आसपास में रहने वाले श्रावक भाइयों को जाकर यह सारी बात कही। तुरन्त 2-4 श्रावक भाई स्थानक में दौड़े आये, और तिक्खुतों-तिक्खुतो करते हुए तपस्वीजी को वन्दना की, और मुहँ के आगे पंचीयासा कपड़ा रखकर उदासीन चहरे और गमगीन भाव से पूछने लगे कि महाराज यह क्या हुआ? तपस्वीजी ने कहा— 'भाईयों! मुन्नालालजी के पास वह सोया हुआ था और आधी रात को पेट में खूब दर्द हो रहा है ऐसा कहकर शौच जाने के लिए पिछली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीढ़ियों से उतर कर पास वाली गली में से निकल कर चुपचाप कहीं चला गया इत्यादि ।"

सुनकर श्रावक भाई बड़े खिन्न हुए। कहने लगे कि क्या यह मुन्नालाल महाराज को अपने भाई के चरित्र के विषय में कुछ ज्ञान नहीं था ? इन्होंने क्या सोचकर उसको दीक्षा लेने के लिए तैयार किया और २-४ हजार रुपये श्रावकों के नाहक के खर्च कराये तपस्वीजी ठंडे कलेजे से बोले कर्म की विचित्र गति को किसको खबर होती है ? परन्तु श्रावकों को इस बात का कुछ भी प्रचार न करना चाहिये और जाने कुछ हुआ ही नहीं । इस तरह मन मार कर चलना चाहिये । परन्तु ऐसी बात एकदम छिपी कैसे रहे। वह चला गया इसका तो किसी को ज्यादा अफसोस न हुआ क्योंकि ऐसे किस्से तो अनेक बार हुआ करते हैं । परन्तु जो हजार-पाँच सौ का, कपड़े आदि का कीमती माल उठा गया था उसका इन बनियों को ज्यादा अफसोस हुआ क्योंकि ये सारा सामान एक अगेवान सेठ के वहाँ का था। घण्टे भर बाद जब यह बात उस सेठ को मालूम हुई तो वे भी तुरन्त स्थानक में आए।

सेठ समाज में एक अगेवान और प्रतिष्ठित व्यक्ति कहलाते थे। समाज के हर एक काम में लोग उनको आगे करते और उनके पास से पैसे आदि की सहायता लेते थे । सेठ इन्दौर के सर्राफा बाजार के एक नामी राजमान्य धनिक माने जाते थे, सेठ हमेशा बहुत ठाठ-पाठ से रहते थे। स्थानक में आये तब तपस्वीजी को वन्दना की और मुँह के आगे खेस रख कर गम्भीर भाव से पूछने लगे। कौनसे शब्दों द्वारा उन्होंने गुरूजी को सम्बोधित किया उसकी तो आज मुझको ठीक स्मृति नहीं है परन्तु सेठ के पहनावे और हावभाव का तादृश्य चित्र मेरे मन पर यथावत चित्रित है । सेठ के साथ दो-तीन अन्य वैसे अगेवान व्यक्ति भी थे। सेठ की उम्र कोई ६०-६५ वर्ष जितनी थी। गौरवर्ज, मध्यम कदका शरीर, लम्बी नाक और चौड़ी आंखे चमका करती थीं । उन्होंने, शरीर पर धनवान लोग पहना करते हैं वैसे ऊंची जात की मलमल का मालवा ढंग का अंगरखा पहन रखा था । नीचे चूड़ीदार सफेद दूध के झाग जैसे कपड़े का बना पाई-जामा पहने हुए थे और पैरों में अच्छी जात के मौजे थे। अंगरखे पर गले में एक कीमती पन्नों की माला पहन रखी थी। हाथ में किमती हीरे और मानेक का अंगुठियाँ पहनी हुई थीं। कानों में गोल सोने के कुण्डल जैसे थे, जिनके बीच में पन्ना और मानेक जैसी किमती रत्न लटक रहे थे । सेठ ने धीमी आवाज से तपस्वीजी महाराज को जैसे ठपका देते हो वैसे शब्द कहने लगे- "साधुओं को चेलाओं का बड़ा मोह होता है और जो आया उसको मुण्डवाकर साधु बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं । योग्य अयोग्य की परीक्षा साधु कभी नहीं करते और दीक्षा के बहाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हजारों रूपये बनियों के बर्बाद करवाते रहते हैं। मुझे इन भाईयों ने आकर दीक्षा महोत्सव की बात कही, तब मैंने धंसकर ना कही थी। नाहक का मेरा हजार-पाँचसौ का माल सामान गंवाया इत्यादि।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद सेठ बोले "पाँचवें आरे का ये कुप्रभाव है। अपन सब भारी कर्मी जीव इस आरे में जन्मे हैं आज कोई केवल ज्ञानी विद्यमान नहीं है, नहीं तो उनके पास जाकर पूछते कि भगवान वह भारी कर्मी जीव कहाँ जाकर छुपा है। पता लगने पर तुरन्त सरकारी सिपाहियो द्वारा रस्से से बंधवा कर मंगवाता वगैरह। खैर भावीभाव परन्तु आप साधु महाराजों को चाहे जिसे मूण्डकर चेला बढ़ाने का मोह न रखना चाहिये।" ऐसा कहकर सेठ चले गए। इस घटना के बाद उसी दिन दोपहर को हम साधुओं ने उस स्थानक से विदाई ली और दक्षिण के लिए रास्ता नापना शुरू किया।

इन्दौर से प्रस्थान

इन्दौर से दो चार मील दूरी पर स्थित गांव में जाकर रात रहे। शाम को प्रतिक्रमण किया और जैसे पिछली रात को कुछ हुआ ही नहीं वैसे मौनधारण करके हम पाँचों साधु सो गए। दूसरे दिन सुबह दक्षिण की ओर जाने वाली महू-आसेरगढ़ की सड़क पर क्रम से आगे बढ़े।

मेरे मन में देश दर्शन का उत्साह बहुत रहा करता है। प्राकृतिक सौंदर्य, दर्शक पर्वतों, जंगलों, नदियों वगैरह को देखकर मेरा मन हमेशा प्रफूल्लित होता रहता है। मालवे में धार, इन्दौर, रतलाम, उज्जैन वगैरह स्थानों में परिभ्रमण करते हुए ऐसे कोई खास प्राकृतिक दृश्य देखने में नहीं आये थे। मालवे की भूमि लगभग समतल होकर खास उपजाऊ कहलाती है। उसमें बीच२ में पहाड़ों की या बड़ी२ नदियों की सुन्दर दृश्यावलियां दृष्टिगोचर नहीं होती।

हम इन्दौर के बाद महू स्थान छोड़कर आगे बढ़ने लगे तब नर्बदा की घाटी का प्रदेश आने लगा। महू से कोई २०–२५ माईल दूर बड़वाह नामक कस्बे में जैसा स्थान नर्बदा के तट पर बसा हुआ है। उसके सामने वाले नदी के तीर पर ओंकारेश्वर का प्रसिद्ध तीर्थधाम आया हुआ है। हमारा वैसे तीर्थ स्थानों को देखने के लिए जाना नहीं होता था। मगर मार्ग में कोई दर्शनीय स्थान आते तो अवश्य देखने का प्रयत्न करते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महू से बड़वाह जाते समय रास्ते में कालापानी नामक एक छोटा सा रेल्वेस्टेशन है। महू से थोड़ी दूरी पर छोटी पहाड़ियां आने लगी और वह उतार वाला प्रदेश था इसलिए उसमें से जानी वाली सड़क स्थान२ पर टेढ़े मोड़ लेकर नीचे उतरती थी। उसके पास पास रेल्वे लाईन भी उसी तरह उतर रही थी। बीच में एक दो छोटी मोटी पहाड़ियां काटकर उसमें से रेल्वे लाईन निकाली हुई देखी। देखकर मेरे आश्चर्य का पार न रहा। थोड़ा बहुत जानने में आया था कि अंग्रेजों की यह एक अद्भुत करामात है। जिन्होंने ऐसे बड़े पहाड़ को नीचे से काट२ कर उसमें से रेल्वे लाईन निकाली थी। हम उस सड़क पर तीन चार घण्टे तक चलते रहे, उस बीच में एक पेंसेजर गाड़ी भी उस रेल्वे लाईन पर जाता देखी और वह फक-फक करती सुरंग में घुस गई और थोड़ी देर बाद दूसरी ओर बाहर निकल गई। मेरे अबोध और बाल मन में इसे देखकर कई तर्क-वितर्क होते रहे।

हमें जिस स्थान पर पहुँचना था वह लगभग १०-१२ मील जितना दूर था। रास्ते में रहने लायक कोई खास स्थान नहीं था।

साधु जीवन की चर्या की कुछ चर्चा

हमारे इस प्रकार के साधु जीवन की चर्या के विषय में कुछ थोड़ी सी चर्चा करने चाहता हूँ क्योंकि हम जिस तरह की कुछ कठिन कही जाने वाली ऐसी चर्या का पालन करते थे वह चर्या मेरे जीवन में फिर कभी देखने में या अनुभव में नहीं आयी।

हम साधुजन अपने उपयोगी आवश्यक वस्त्र, पात्र और पोथी पन्ने सब अपने पास ही रखते और अपने शरीर द्वारा जितने उठाये जा सके उतने ही उपकरण रखते थे। किसी भी गृहस्थ के द्वारा अपने उपयोग की एक भी वस्तु उठवाते नहीं थे, अथवा किसी के द्वारा मंगवाते भी नहीं थे। सूर्योदय होने के बाद ही विहार करते थे और सूर्यास्त हो जाने के बाद एक डग भी चलते नहीं थे दोपहर के वक्त विहार करते तो गांव में से लिया हुआ आवश्यक निर्वद्य पानी पात्र में रख लेते थे भर ग्रीष्म में भी इसी चर्या का पालन करते थे। नियम था कि जिस स्थान से आहार या पानी ग्रहण किया हो उस स्थान से ज्यादा से ज्यादा कोई ४ मील (दो कोस) दूर ले जाने की आज्ञा थी। कितनीक दफह ऐसा अनुभव करना पड़ा कि भर ग्रीष्म के दोपहर को ३-४ बजे तक विहार करते और २ कोस दूर सीमा पूरी हो जाती तो वहाँ किसी वृक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचे बैठकर अन्तिम पानी काम में लेते यानी पी लेते। ऐसा करने पर यदि गर्मी ज्यादा अनुभव होती तो आध-पौन घण्टा उस वृक्ष के नीचे विश्रान्ति लेकर बैठे रहते और पानी का अंतिम घूंट पी कर पात्र में बचा हुआ पानी शुद्ध भूमि पर 'परठ' देते। परठने की क्रिया भी खास तरह की होती है भूमि की बराबर देख-भाल कर, कोई वनस्पती उगी हुई न हो, कीड़े-मकोड़े आदि सूक्ष्म जीवों का हलन-चलन न हो, ऐसी शुद्ध निर्जीव भूमि में पानी को ढोल देना पड़ता है। ऐसी ही क्रिया लघु-शंका करने के लिए भी करनी होती है। वर्षों तक ऐसी चर्या का पालन हमने कम ज्यादा तौर पर किया था। रास्ते में चलते समय किसी के साथ बात न करनी चाहिए ऐसी भी सीख दी गयी थी। चलते-चलते रात्रि का निवास करने के योग्य स्थान नजदीक न हो तो फिर सूर्यास्त देखकर कहीं भी वृक्ष के नीचे या कहीं कोई खेत की भोंगड़ी का आश्रय लेकर रात्रि व्यतीत करनी होती थी। ऐसे २-४ अनुभव भी उस जीवन में हुए।

इस तरह जब हम उस सड़क के रास्ते से जा रहे थे तब शाम होगई। उस वक्त रेल्वे की लाईन और चलने की सड़क के बीच में एक जगह जंगल में एक वृक्ष देखने में आया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि गांव तो २-३ कोस की दूरी पर है इसलिए चलना निषिद्ध था जंगल में उस वृक्ष के नीचे ही पशुओं के बैठने की जगह थी उसको रजोहरण के द्वारा साफ करके उसके ऊपर वस्त्र डालकर रात्रि व्यतीत की। दिन सहज-साज गर्मी जैसे थे, इसलिए रात्रि ज्यादा कष्टदायक नहीं लगी। हमने जिस पेड़ के नीचे रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया, वहां से १००-२०० कदम दूर रेल्वे मेन की पक्की कुटिया थी। जिसमें एक रेल्वेमेन रहा करता था वह आती जाती गाड़ियों को लाल या हरी झण्डी या बत्ती बताने का काम किया करता। दूर से उसने हमको देखा और हमारे पास आकर कहने लगा कि "साधु महाराज! आपने यहाँ इस सुनसान जंगल में किसलिए पड़े रहना पसन्द किया? यहां तो कभी कभी रात्रि को चीते जैसे जानवर भी आ जाते हैं और आस पास के भेड़ या बकरियाँ आदि को उठा ले जाते हैं।" हमने हमारी स्थिति उसको समझाई उसने कहा महाराज रात को जगते रहना और कोई पशु जैसा दूर से आता दिखाई पड़े तो खंखारा वैगरह करना। मैं भी रात को मेरी कुटिया में जगता रहता हूँ। उस रेल्वे मेन की बात सुनकर हमारे मन में जरूर भय का संचार हुआ। सारी रात सोने की बात ही न थी तपस्वीजी और हम साधु मन में नवकार मन्त्र का जाप करते रहे और बिछौने में सिकुड़ कर मुँह पर चद्दर ओढ़कर पड़े रहे। मगर रात्रि में रेल्वे लाईन पर ३-४ दफे गाड़ियां आयी गयी। उनको देखने से मुझे तो रात खूब आनन्द-दायक लगी। जीवन में पहली दफे ही ऐसा कौतुहल जनक दृश्य देखने में आया। उस जमाने में न मोटर थी न ट्रक वगैरह, साईकिल पर भी कोई दिखाई न देता था मात्र बैलगाड़ियाँ चलती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह प्रवास हमारा लगभग १५–२० दिन जितना लम्बा था और बीच–बीच में ३–४ बार हमको ऐसे जंगल में रात्रि व्यतीत करनी पडी थी। एक जगह, जहाँ २–४ आम के वृक्ष थे वहाँ हमको रात्रि व्यतीत करने का प्रसंग आया। वहाँ आस–पास के वृक्षों के नीचे शाम होते ही ५–१० हिरणों का झुण्ड आकर बैठ जाता था। दूर जंगल में कहीं चीते वगैरह हिंसक पशुओं की आवाज सुनाई पड़ती तो वह हिरणों का झुण्ड हमारे आस–पास आकर बैठ जाता हमको भय लगता रहता था कि शायद इन हिरणों की वजह से वह हिंसक पशु इस तरफ दौड़े न आएँ।

इस तरह हम चलते हुए नर्मदा नदी के तीर पर बसे हुए बड़वाह नामक अच्छे से कस्बे में पहुँचे। बड़वाह के सामने किनारे पर ओंकारेश्वर का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। जहाँ राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि देशों के हजारों लोग प्रतिवर्ष यात्रा करने आते हैं। बड़वाह, इन्दौर के होल्कर राजाओं का ग्रीष्म निवास की दृष्टि से एक अच्छा सा हिल स्टेशन समझा जाता है।

हम जिन दिनों बड़वाह पहुँचे उन्हीं दिनों में होल्कर महाराजा ने एक नयी मोटर कार विलायत से मंगवाई थी। इस मोटर में बैठकर होल्कर महाराज शाम के समय अपने महल से निकल कर बड़वाह के बाजार में होते हुए कहीं शिकार आदि के लिए जाया करते थे। हम बाजार के एक जैन श्रावक की दुकाननुमा जगह में ठहरे हुए थे, तब हमारे मकान के सामने होकर निकलने वाली उस मोटर गाड़ी को हम बड़े चाव से देखा करते थे। गांव के अन्य लोग भी उसे देखने के लिए बाजार में इकठ्ठे हो जाते थे। बिना घोड़ों से चलने वाली इस नई तरह की बग्घी जैसी गाड़ी में बैठकर जाते हुए महाराजा को लोग झुक झुक कर मुजरा करते रहते थे। हमारी ही तरह लोगों ने भी इस तरह बिना घोड़ों से चलने वाली इस अजीब गाड़ी को जिन्दगी में पहली ही बार देखी थी। मेरे मन में कई दिनों तक इसका कौतुहल बना रहा कि यह गाड़ी किस तरह सड़क पर दौड़ी जाता है। पैट्रोल और गाड़ी में लगे हुए इंजिन आदि की किसी को कोई कल्पना नहीं थीं।

बड़वाह से हम महेश्वर गये, जहाँ नर्बदा नदी के किनारे पर सुप्रसिद्ध होल्कर महारानी अहल्याबाई ने बड़े सुन्दर घाट बनवाये हैं। वहाँ पर नर्बदा नदी का बहुत सुन्दर दृश्य दिखायी देता है। वहां से वापस आकर नर्बदा नदी को पार करने के लिए बड़वाह से कुछ दूरी पर, बने हुए रेल्वे के पुल पर होकर, हम सामने वाले किनारे पर पहुँचे अन्य लोग तो नावों में बैठ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र नदी को पार करते रहते हैं, परन्तु जैन साधु को नाव में बैठना निषिद्ध है। इसलिए नदी दि को पार करने के लिए उसी रास्ते होकर वे आते जाते हैं, जहाँ पुल आदि का साधन । हम उस रास्ते चलते हुए दो तीन दिन बाद एक छोटे से गांव में पहुँचे, जहाँ जैन श्रावक ोई घर नहीं था । केवल २५-३० किसानों आदि के घर थे । एक किसान ने हमें रात को हरने के लिए पशुओं के बाँधने के स्थान के पास जो चौंतरा सा बना हुआ था और ऊपर पपरेल का टूटाफूटा छप्पर था, वहाँ जगह बतलायी । हम वहाँ ठहर गये परन्तु उसमें चारों रफ से खुली हवा आती रहती थी, उस हवा के लग जाने से मुझे जोरों की सर्दी होगयी ौर सुबह होते २ तो खूब जोर से बुखार चढ़ आया । ऐसी स्थिति में हमें उस दिन विहार रना स्थगित रखना पड़ा । दोपहर होने पर तपसीजी और एक अन्य साधु किसानों के यहाँ कुछ भिक्षा माँगने के लिए गये । वे किसान केवल जवारी की रोटी और उसके साथ में बैंगन, प्याज आदि की सब्जी बनालेते थे, साथ में छाछ का उपयोग करते रहते थे । तपसीजी ४-५ किसानों के वहाँ जाकर आधा२ जवारी की रोटी भिक्षा के रूप में माँग लाये कुछ थोड़ी सी छाछ भी अपने पात्र में ले आये । साधुओं ने उस आहार से अपनी कुछ भूख मिटायी परन्तु मैं तो बुखार में सिकुड़ कर सारा दिन पड़ा रहा । जिस किसान के मकान के छप्पर में हम टिके थे, वह किसान शाम को जब खेत से घर पर आया तो उसे मालूम हुआ कि हम लोग उसके मकान में उसी तरह टिके हुए हैं । जब हमने पिछली रात्रि के लिए उससे मकान मांगा तो कहा कि भाई सुबह दिन उगते ही हम यहां से चले जायेंगे। किसान सुबह जल्दी ही उठकर अपने पशुओं को लेकर खेत पर चला गया । घर में उसकी स्त्री थी वह भी ९-१० बजे रोटियां बनाकर खेत पर चली गयी घर में शायद दो-तीन बच्चे थे । किसान जब शाम को अपने पशुओं को लेकर घर पर आया तो हमें वहीं देखकर उसे कुछ आश्चर्य सा हुआ ।

मालवे के किसान कुछ भद्र स्वभाव के होते हैं और वे साधु सन्त, अतिथि आदि क तरफ भक्ति भी रखते हैं। उस किसान को हमारे सारे दिन वहीं रहने की बात का पता लगा तो वह नम्र भाव से कहने लगा कि बाबाजी महाराज आपने कुछ खाया-पीया या नहीं ? उसे हमारी बात कुछ बता दी गयी और मैं सारा दिन बुखार में पड़ा हुआ सिसक रहा था यह देखकर उसके दिल में बहुत दया हो आई। वह कहने लगा कि महाराज आपके इन छोटे साधु को पिलाने के लिए दूध गरम करके ला देता हूँ । आप इनको कुछ खिलाद, जिससे कुछ गरमी आ जायेगी इत्यादि। वे किसान चाय का नाम भी नहीं जानते थे और लोंग आदि मसाले वाली चीजों का भी उनको कुछ खयाल नहीं था । तपस्वीजी ने कहा कि भाई हम साधु लोग रात को न पानी पीते हैं, न दूध ही लेते हैं और न किसी प्रकार का रोटी आदि का भोजन ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं । किसान सुनकर गम्भीर भाव से अपने मकान में चला गया । मेरा बुखार दूसरे दिन भी नहीं उत्तरा इसलिए दूसरे दिन भी हमें वहीं उस छप्पर में रहना पड़ा । किसान ने दूसरे दिन जरूर थोड़ा सा गरम दूध लेने को हमें आग्रह किया और वह लिया गया । अन्य साधुओं के लिए उसी तरह किसानों के जाकर जवारी की लुखी रोटी और छाछ का पानी भिक्षा के रूप में ले आए ।

सर्दी के दिन थे, इसलिए कोई किसान गरम पानी भी हाथ आदि धोने के लिए करते थे, सो हमको लेने योग्य पानी किसी के यहां मिला तो उसे भी एक पात्र में ले आए । उस किसान के वहाँ से भी दूसरे दिन एक दो जवारी की रोटियाँ बहेर ली । उसके यहाँ अफीम के पत्तों की भाजी बनाई गई थी, वह भी थोड़ सी मिलगई । तीसरे दिन मेरा बुखार कुछ हल्का हुआ, तब उस किसान के वहां से जो थोड़ा बहुत दूध मिला वह पीया । इस तरह ४–५ दिन हमें वहाँ निकालने पड़े । बुखार के हट जाने पर और कुछ थोड़ी सी चलने जैसी शक्ति आने पर हमने वहां से आगे के लिए प्रयाण किया ।

कोई दो तीन दिन धीरे-धीरे चलने के बाद हम एक गांव में पहुँचे, जो आसीरगढ़ की छावनी से कुछ ८–१० मील दूरी पर था । हम जिस रास्ते से होकर जा रहे थे वह सड़क से कुछ ५-७ मील की दूरी पर था ये गांव सब छोटे छोटे किसानों की बस्ती वाले थे । उनमें जैन या अन्य बनिये तथा ब्राह्मण आदि की बस्ती नहीं थी परन्तु किसानों के यहां से हमें जवारी की रोटी, कुछ छाछ और कहीं थोड़ा सा गरम पानी मिल जाया करता । यह रास्ता कुछ पहाड़ी सा था और वह निमाड़ का प्रदेश कहलाता था । हमें दक्षिण की ओर जाना था, जिसका मुख्य रास्ता आसीरगढ़ होकर बरहानपुर जाता था ।

सतपुड़ा के जंगल का उग्र विहार

हम जब एक वैसे पड़ाव वाले गांव पहुँचे तो वहां हमें मालूम हुआ कि मालवे में कहीं–कहीं प्लेग का प्रकोप होने से, मालवे से उधर जाने वालों को आसेरगढ़ के पास वाली छावनी में कम से कम १० दिन के लिए प्लेग प्रतिबंधक केम्प में रहना पड़ता है और टीके लगवाने पड़ते हैं । हमारे लिए यह एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई । तब हमने गांव वालों से पूछा कि भाई ! तुम लोग कभी अमुक गांव जाते होगे तो क्या करते होगे ? तब हमें कहा गया कि हम लोग कभी सड़क के बड़े रास्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से नहीं जाते । हम लोग तो गांवों के जंगल वाले रास्ते से होकर चले जाते हैं । तब हमने कहा कि हमें भुसावल पहुँचना है, तो वहाँ जाने का वैसा कोई जंगल का सीधा रास्ता है ? इत्यादि तब हमें कहा गया कि अमुक रास्ते से पहाड़ों के बीच होकर जाने से दो-तीन दिन में भुसावल से इधर अमुक गांव पहुँच जाते हैं। हमने उन किसानों से रास्ते आदि की ठीक जानकारी प्राप्त की और उसी रास्ते से आगे जाने का विचार किया ।

हमने गांव वालों से पूछा कि उस रास्ते का जानकार यहां से कोई जाता हो तो हमें उससे मिला दो । तब गांव के एक मुखिया से किसान ने कहा कि यहां पर गांव के बाहर एक सरकारी चौकी है, वहाँ से रोज एक चोकीदार कुछ कागजात वगैरह लेकर जाता है । यहां से १२-१३ मील के फासले पर पहाड़ी जंगलों के ठीक बीच में सरकारी जंगलात महकमें की बड़ी चौकी है, वहां पर यह चौकीदार कागज पहुँचाता है । आप लोग उसके साथ उस बड़ी चौकी पर चले जाओ और वहां से फिर वैसा ही कोई चौकीदार आपको मिल जायेगा, जो पहाड़ों के उस पार वाले गांव में पहुँचा देगा, इत्यादि ।

हम उस दिन उसी गांव में रहे और किसानों के वहाँ से जुवारी की कुछ रोटियाँ और छाछ का पानी लाकर अपनी भूख मिटायी । रात को वह मुखिया सा किसान उस चौकीदार को बुला लाया हमने उसको हमारे जाने की बात समझायी । वह कुछ भला सा आदमी था । सो उसने कहाकि बाबाजी महाराज मैं कल सुबह आठ-नौ बजे अपनी चौकी से कुछ सरकारी कागज लेकर उस बड़ी चौकी को जाऊगाँ, सो आप लोग भी मेरे साथ चले चलना । पर रास्ता बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा और कई पहाड़ों पर चढ़ने उतरने के बाद वहां पहुँचता है । इसमें ६ से ७ घण्टे लगते हैं । रास्ते में कोई गाँव या पड़ाव जैसी ठहरने की जगह नहीं है । मैं तो महिने में ५-१० दफे वहां जाता रहता हूँ, इसलिए मुझे तो वह रास्ता वैसा विकट नहीं लगता, पर औरों के लिए वह विकट सा जरूर है । अगर आपकी हिम्मत हो तो मेरे साथ कल चले चलना हम साधुओं को कुछ थोड़ा सा वैसे रास्तों का अनुभव है और अब दक्षिण की ओर जाना ही है तथा आधे रास्ते तक आ पहुँचे हैं तो दो-तीन दिन का यह विकट प्रवास पूरा कर लेना चाहिये । इस विचार से हम दूसरे दिन सुबह होते ही उस गांव वाले तीन चार किसानों के घर से कुछ जवारी की रोटियां माँग लाये साथ में कुछ ताजी छाछ और अफीन की भाजी भी मिलगई । मुखिया किसान के वहाँ नहाने के लिए गरम पानी किया हुआ था उसमें से भी कुछ थोड़ा सा गरम पानी पात्र में ले आये । हमने जल्दी-जल्दी आहार किया और कपड़े आदि शरीर पर लपेट कर उस चौकीदार की चौकी पर पहुँचे । चौकीदार आदिम जाती का था, पर जरा समझदार और कुछ बड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गांवों में रहने के कारण बोल-चाल में ठीक मालूम दिया। उसकी चौकी में कुछ गाय, भैंस और भेड़-बकरी आदि जानवर थे और घर में दो-तीन स्त्रियाँ भी थी। उनका पहनाव आदि भी ठीक राजस्थान के भीलों की तरह का था। वे गवाँरू निमाड़ी बोली बोलते थे, जो कुछ ता हमारी समझ में आती थी और कुछ नहीं आती थी। जब हम उस चौकी पर पहुँचे तब वह चौकीदार घर में रोटी खा रहा था। हमको चौकी के नजदीक आते देखकर उस की दो-एक औरतें चिल्लाकर घर में घुस गई और कुछ जोर जोर से बोलने लगी। उन औरतों ने हमारे जैसे मुँह बाँधे हुए और विचित्र वेष धारण किये हुए मनुष्यों को कभी नहीं देखा था। इसपे शायद वे स्त्रियां डर सी गई। चौकीदार तुरन्त घर से बाहर आया और हमें देखकर बोला कि बाबाजी मैं रोटी खा रहा हूँ सो आप लोग उस दरखत के नीचे कुछ देर ठहरें इतना कहकर वह घर के अन्दर गया और तुरन्त चौकीदार का पहनावा पहन कर और हाथ में एक अच्छी लोहे की कड़ीदार लकड़ी और जिस पन लोहे का धार-दार फलक लगा हुआ था, वह लेकर बाहर आया। साथ में डाकिये लोग जैसा डाक का थेला रखते हैं, वैसा थेला उसने अपनी बगल में लगा लिया। उसने खाने के लिए कुछ राटियां भी उस थेले में डाल ली और वह घर की औरतों को कुछ कहकर रवाना हुआ, और हमको भी कहा कि चलो बाबाजी अब हम चलो हैं। हम उसके पीछे२ हो लिए। उसके परों में तो अच्छी मजबूत जूतियाँ थीं, बदन पर पुलिस के जैसा पहनावा था और सिर पर किसानों की सी ठीक पगड़ी बाँध रखी थी। लकड़ी को अपने कंधे पर रख ली थी और उसमें वह थेला भी लटका लिया था, जो उसकी पीठ पर लटकने लगा। चलते समय उसने बीड़ी भी सुलगाकर अपने मुँह रखली थी। चौकी से बीसेक गज के फासले पर एक छोटा सा चौंतरा बना हुआ था, जिस पर भेरूजी के प्रतीक स्वरूप २-३ प्रस्तर खण्ड रखे हुए थे, जिन पर तेल-सिन्दूर आदि लगा हुआ था। चौकीदार उन गृहदेवों को नमस्कार करके आगे बढ़ने लगा।

हम लोग तो नंगे पैर और नगे सिर थे हमारे कंधों पर आगे पीछे पौथियों के बेष्टन लटक रहे थे। हाथ में पात्रों वाली झोलियां थी। एक हाथ में लम्बी डंडो वाला जोहरण लेकर चल रहे थे। कभी२ रजोहरण को कंधे पर भी डाल लेते थे। इस प्रकार हम ५ (पाँचों) साधु और वह चौकीदार मिलाकर छ मनुष्यों का काफिला आगे बढ़ने लगा। सुबह का समय था धूप अच्छी निकली हुई थी, इसलिए हम सब जल्दी-जल्दी पैर उठाकर आगे बढ़ने लगे। कोई १ मील तक तो सीधा समतल रास्ता था। रास्ता केवल इक्के-दुक्के मनुष्यों और पशुओं के चलने जैसा था। बाद में एक पहाड़ी की चढ़ान आयी उस पर हम आस्ते२ चढ़ने लगे। कंटीले वृक्षों की झाड़ियाँ भी शुरू हुई। उनके बीच में होकर हमारी छोटी सी पगडंडी जा रही थी। ऐसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झाड़ी और बड़ी ऊँची घास हमें लांघना था। साधु के आचार के मुताबिक ऐसे रास्ते पर चलना और हरी घास तथा झाड़ियाँ को स्पर्श करना निषिद्ध हैं। पर हमारे लिए कोई चारा नहीं था। इसलिए हम उसका कुछ भी विचार नहीं करते थे और रास्ते को किसी तरह तय करना ही हमारा मुख्य लक्ष्य रहा। कोई घण्टा भर में हम उस पहाड़ी की ऊपर की चोटी पर पहुँचे वहाँ से हमने आगे देखा तो सामने की ओर एक उससे भी ऊँची पहाड़ी दिखाई दी। चौकीदार ने कहा कि बाबाजी हमें इस पहाड़ी से नीचे उतरकर सामने दिखाई देने वाली बड़ी पहाड़ी पर चढ़ना है। इस प्रकार तीन पहाड़ियाँ जब हम पार करेंगे तब वह हमारी बड़ी चौकी आयेगी। इसलिए आप जरा फुर्ती से कदम उठाते रहना इत्यादि। हमने कहा चौकीदार जी आप हमारी चिंता न करें, हम आपके पीछे पीछे उसी तरह चलते रहेंगे, जैसा आप चलाना चाहते हैं।

उस पहाड़ी से हम कोई आधे घण्टे में नीचे उतर गए। वहाँ पर एक छोटा सा पानी का झरना बह रहा था। उसमें से चौकीदार ने कुछ पानी पीया। उसने कहा बाबाजी आप भी कुछ पानी पीलें, यह पानी बहुत मीठा है, ऐसा पानी आगे नहीं मिलने वाला इत्यादि। हमने चौकीदार को कहा कि भाई हम साधु लोग ऐसा पानी नहीं पीते हैं। पर हमें भी कुछ प्यास लगी थी। जो पानी हम पात्र में भरकर साथ लाये थे उसको भी क्षेत्र मर्यादा पूरी हो गई होगी ऐसा सोचकर हमने भी वह थोड़ा थोड़ा पानी पी लिया। समय कोई ११–१२ बजे जितना हुआ होगा, क्योंकि घड़ी किसी के पास नहीं थी। हम साधु लोग तो घड़ी रख ही नहीं सकते थे, परन्तु उस चौकीदार के पास भी आज के युग की तरह कोई घड़ी नहीं थी। शायद उस चोकीदार ने तो अपने जीवन में ऐसी घड़ी देखी ही नहीं होगी।

उस झरने को पार करके हम अगली पहाड़ी पर चढ़ने लगे। इसका रास्ता पहली पहाड़ी की अपेक्षा अधिक विषम और पथरीला था। रास्ता घने वृक्षों से आच्छादित था परन्तु पशुओं के जाने आने के कारण कुछ चौड़ा सा था हम जल्दी-जल्दी पैर उठाते हुए पहाड़ी पर चढ़ते गए। कोई २½ घण्टे बाद उस पहाड़ी की चोटी पर पहुँचे, वहाँ से आगे देखते हैं तो इससे कुछ छोटी परन्तु वैसी ही पहाड़ी सामने दिखाई दी। चौकीदार ने कहा उस पहाड़ी को पार करने के बाद उसकी अगली पहाड़ी पर वह बड़ी चौकी है, जहाँ हमें पहुँचना है। सुनकर हमें कुछ विचार तो हुआ कि अभी तो इतनी घाटी और पार करनी है, शायद कहीं रात न पड़ जाय। इस भय से हम लोग जल्दी-जल्दी चलने लगे। चौकीदार तो पूरा अभ्यस्त और रास्ते का जानकार था इसलिए उसके लिए कोई खास बात नहीं थी। वह तो अपनी हमेशा की रफ्तार के मुताबिक चल रहा था और बीच बीच में बीड़ियाँ फूंकता जाता था। हम लोग चुप-चाप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानो मौन धारण किये हुए चले जा रहे थे। पैरों में कुछ थकावट सी भी मालूम हो रही थी, परन्तु किसी तरह उस चौकी पर पहुँचना है यही मुख्य लक्ष्य था। इसलिए न थकावट और न भूख प्यास का ही कोई विचार मन में आता था। उस ऊँची सी पहाड़ी से हम लोग जल्दी-जल्दी नीचे उतरे और फिर एक पानी का अच्छा नाला सा आया, उसमें पानी कल-कल करता बह रहा था, परन्तु बीच-बीच में बड़े२ पत्थर पड़े हुए थे, इसलिए उन पत्थरों पर पैर रखते हुए हमने उस नाले को पार किया। फिर तीसरी पहाड़ी की चढ़ान शुरू हुई। वह भी दूसरी पहाड़ी की तरह विषम और पथरीली थी झाड़ी भी खूब सघन थी पर इस झाड़ी के कारण हमें सूर्य का ताप नहीं सताता था। कोई ४ बजे के करीब हम तीसरी पहाड़ी की चोटी पर पहुँचे वहां पर चौकीदार बैठा और हमें भी कुछ विश्रान्ति लेने को कहा और बताया कि यह सामने जो चौथी छोटी सी पहाड़ी दिखाई देती है उसकी चोटी पर वह बड़ी चौकी है। हमको वहाँ पहुँचते पहुँचते करीब डेढ़ घण्टा और लगेगा।

५-१० मिनिट की विश्रन्ति के बाद हम लोग आगे चलने लगे। इस चौटी पर से नीचे उतरे तब एक छोटी सी नदी आयी। इसमें काफी पानी बह रहा था, परन्तु बीच-बीच में पत्थर की कुछ चट्टानें और बड़े बड़े पत्थर आदि थे जिससे हमें नदी पार करने में कोई विशेष दिक्कत उठानी नहीं पड़ी। चौकीदार ने तो नदी में मुँह वैगरह धोया और अच्छी तरह पानी के कुल्ले आदि कर पेट भर कर पानी पीया। हम तो तृपापरीसह का स्मरण करते हुए कुछ विश्रान्ति ही का आनन्द लेते रहे। फिर तैयार होकर आगे बढ़ने लगे अब जो पहाड़ी चढ़नी थी, वह उतनी ऊँची नहीं थी और उस पर झाड़ियाँ, घास, आदि भी इतनी सघन नहीं थी। पर थकावट का जोर बढ़ता जा रहा था इसलिए यह चढ़ाई पिछली सब चढ़ाईयों की अपेक्षा अधिक कठिन प्रतीत हो रही थी। धीरे-धीरे हम चौथी पहाड़ी की चोटी पर पहुँचे तब वह बड़ी चौकी हमें दिखाई दी। चौकीदार ने कहा कि ये जो कुछ झोंपड़े और दो तीन खपरेल वाले मकान दिखाई देते हैं वही बड़ी चौकी है। कोई आधे घण्टे में हम वहां पहुँच जायेंगे। आकाश की तरफ हमने देखा तो सूर्य भी जल्दी जल्दी नीचे उतरता जा रहा था। हमने भी उसी की तरह जल्दी जल्दी वह पहाड़ी उतरनी शुरू की। सूर्यास्त होते२ हम उस चौकी के नजदीक जा पहुँचे। वहां का मुख्य चौकीदार अपने-पास के कुए पर रंहट चला रहा था और खेत को पानी पिला रहा था। पास में दो-तीन आदिवासी मजदूर बैठे-बैठे तम्बाकू पी रहे थे। हमको दूर से आते देखकर वह चौकीदार घबरा सा गया और पास में बैठे हुए लोगों को कहा कि अरे! देखो, दौड़ो ये डाकू से कौन आरहे हैं, उतने में उसने हमारे आगे-आगे चलने वाले उस चौकीदार को जब देखा तब वह कुछ स्वस्थ सा हुआ और सोचने लगा कि क्या यह चौकीदार जंगल में से किन्हीं चौरों को पकड़कर ला रहा है? और इनके मुँह आदि बांध दिये हैं? इतने में हमारा साथ वाला चौकीदार उसके पास पहुँच गया और उसने मुजरा आदि कर थेले मेंसे कागज निकालकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके हाथ में दे दिया, पर आश्चर्य वश उसने, उस चौकीदार को पूछा कि ये कौन लोग हैं ? और कहां से तेरे साथ आ रहे हैं ? यह इनका कैसा स्वांग है ? मुँह बाँध रखा है, हाथ में कुछ लम्बी डंडी सी ले रखी है इत्यादि। वह चौकीदार धीरे से कहने लगा बाबू ये बनिये के गुरू हैं और साधु कहलाते हैं। ये लोग मेरी चौकी वाले गांव में कल आये और इनका विचार आगे भुसावल की तरफ जाने का है सो सीधा रास्ता जानकर ये इस रास्ते से आये हैं कोई लुच्चे-लंफगे नहीं है। आप इनसे बातें करके सब हकीकत समझ सकेंगे इत्यादि। सुनकर वह हमारी तरफ आया और हमसे कहने लगा क्या आप साधु बाबा हैं, और यहां किसलिए आये हैं, और कहाँ जा रहे हैं ? यह तो बड़ा घोर जंगल है और इधर खासकर कई आता जाता नहीं है। हमारी यह जगलात के महकमें की चौकी है। इस सारे जगल की निगरानी रखना हमारा काम है। कोई चोर-डाकू आदि इस जगल में कहीं लुक-छीप न जायें इसके लिए हमें यहां पहरा देना पड़ता है। जो कोई हमारे इस जंगल में चला आता है तो हम उसे पकड़कर हमारा जो बड़ा चौकीदारी का थाना है, वहा हमें भेज देना पड़ता है। उसने फिर उस साथ वाले चौकीदार से पूछा कि इन्होने खाना-पीना कहां किया और ये सारा दिन ऐसे विकट रास्ते में कैसे आए इनके पैरों में न जूते है न सिर पर कपड़ा है इत्यादि ? तब उस चौकीदार ने हमारे विषय में अपने गांव के मुखिया से जो कुछ सुना था वह कह सुनाया। सुनकर उस बड़े चौकीदार का मन कुछ शांत हुआ और हमसे कहने लगा कि बाबाजी अब रात हो रही है इसलिए आप लोग यह हमारी एक झोंपड़ी है उसमें ठहर जाईये। यहां पर रात के समय चोता आदि जानवर आते रहते हैं, इसलिए सारी रात हमारे इस मैदान में लकड़ियां जलती रहती है और हमारे दो-तीन नौकर भी पहरा लगाते हैं। हम उस झोंपड़ी में जा कर शांति से बैठे और कपड़े आदि खोलकर तथा कुछ विश्रान्ति लेकर जैसे-तैसे प्रतिक्रमण किया। हम सभी खूब थके हुए थे इसलिए अपने कपड़े बिछाकर सोने की तैयारी करने लगे। इतने में उस चौकी का जो मुख्य थानेदार सा था वह घोड़े पर सवारी करता हुआ वहाँ पहुँचा। उसके ठहरने के लिए अलग एक ठीक सा घर था, जिसमें वह रहा करता था। उस दिन वह कहीं जगल में गया हुआ था। उसके आने पर उस छोटे चौकीदार ने हमारो आने तथा झोंपड़ो में ठहरने की बात कही। वह थानेदार जाति का ब्राह्मण था और कुछ पढ़ा लिखा था। निमाड़ के किसी कस्बे में रहने वाला था पर वर्षो से उस चौकी का वह खास काम सम्भालता था। बीच-बीच में वैसी अनेक चौकियाँ उस पहाड़ी जगल में थी, जहां पर उसको निगरानी पर बार बार जाना पड़ता था। वह आज किसी दूसरी चौकी की निगरानी करने चला गया था। उसने जब सुना कि बनियें लोगों के कुछ साधु आज इस चौकी पर आये हैं तो उसको कुछ आश्चर्य हुआ और कुछ विचारने जैसी बात भी लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थोड़ी देर बाद वह अपने छोटे चौकीदार को साथ लेकर हमारी झोंपड़ी के आगे आया और हमसे कुछ बातें पूछने लगा, तब तपस्वीजी ने अपनी स्थिति के बारे में कुछ बातें उसे बतलाई । सुनकर वह कुछ विचारों में पड़ गया और पूछने लगा कि आपने आज सारा दिन कुछ खाया-पीया नहीं और ऐसा विकट रास्ता इस तरह नंगे पैरों चलते हुए यहां पहुँचे अभी आप कुछ दूध लेना चाहेंगे, तो मैं आपको दे सकूँगा । तपस्वीजी ने कहा कि भाई साहब हम लोग सूर्यास्त होने के बाद कुछ भी खाते-पीते नहीं। कल सुबह देखा जायेगा। यह सुनकर वह थानेदार अपने मकान में चला गया और हम भी खूब थके हुए होने कारण नवकार मंत्र का स्मरण करते हुए निद्रादेवी को गोद में लीन हो गये । दूसरे दिन सुबह होने पर हम लोग प्रतिक्रमणादि क्रिया से निवृत होकर सूर्योदय होने पर झोंपड़ी में से बाहर निकले, ता हमारे साथ आने वाला चौकीदार हमारे पास आया और बोला बाबाजी मैं अब यहां से वापस अपने गांव जाऊँगा । आप लोग यहां से जो चौकीदार अगले पड़ाव की तरफ जायेगा, उसके साथ चले जाना मैं उसको यह बात कह दूंगा ।

चौकीदार की इस बात को सुनकर हमारे मन में उसके प्रति एक प्रकार का कृतज्ञता का भाव उत्पन्न हुआ । परन्तु हम सर्वथा निष्कींचन थे । उसको देने के लिए हमारे पास न कोई पैसा था, न कोई वस्त्र था और न कोई अन्य वैसी ही चीज थी, जो हम उसे दे सकें । कम से कम मेरे मन में तो यह बात खटक रही थी । न हमारे पास वैसा गृहस्थ भी था जिसके पास से हम उसको कुछ पैसे आदि दिलाते। हमने केवल उसको दो मीठे शब्दों में कहा कि भाई तुमने हम पर बड़ी महरबानी की है जिससे हम किसी प्रकार की तकलीफ के बिना इस चौकी पर पहुँच गए हैं और अब आगे भी इसी तरह पहुँच जायेंगे । भगवान तुम्हारा भला करे ।

इतने में वह थानेदार अपने मकान में से निकलकर बाहर और शिष्टता बतलाते हुए "नमो नारायण बाबाजी" ऐसा कहता हुआ हमारे पास आया और कहा कि बाबजी रात को कोई तकलीफ तो नहीं हुई ? अब आप यहाँ से कहां जाना चाहते हैं ? इत्यादि बातें पूछने लगा । हमने कहा भुसावल की तरफ हमें जाना है। यहां से कोई अच्छी बस्ती वाला गांव कितनी दूर है और वहां हम कैसे पहुँच सकेंगे ? इसका जरा रास्ता बताईये। तब उसने कहा कि यहाँ से १०-१२ मील की दूरी पर अमुक गांव है । बीच का सारा पहाड़ी रास्ता है और जिस तरह आप लोग कल तीन-चार पहाड़ियाँ लाँघकर यहां तक पहुँचे हैं, इसी तरह तीन-चार पहाड़ियाँ लांघने पर वह बस्ती वाला गांव आता है । यह सारा जंगली प्रदेश है, इस पच्चीस मील के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रास्ते में कोई बस्ती नहीं है। यह सतपुड़ा का बड़ा जंगल कहलाता है। मालवे के निमाड़ प्रदेश की तरफ से आते हुए और आगे खान देश के तरफ जाते हुए बीच में सतपुड़ा की पहाड़ों की कतारें पार करनी पड़ती है। हमारे जंगलात के महकमें के नोकरों और चौकीदारों के सिवा किसी को इस रास्ते आना-जाना मना है। चोर और डाकू आदि इन जगलों में छिपे रहते हैं। इसलिए उनकी निगरानी रखने के लिए हमारी ऐसी अनेक चौकियाँ इन पहाड़ों में बनी हुई है। आप इधर कैसे आगये हमको आश्चर्य सा लगा है।

हमने आपके जैसे साधु कभी देखें नहीं है। हमारे गांव में कुछ बनिये लोग हैं जो जैनी कहलाते हैं, पर हमने वहां आपके जैसे उनके गुरू कभी आते देखे नहीं। बनियों से हम कभी कभी सुनते हैं कि उनके जैन गुरू सेवड़े या यतीजी लोग होते हैं, और वे बड़े करामाती होते हैं, जंतर-मतर, दवा-दारू आदि भी वे करते हैं। परन्तु हमने उनको कभी नहीं देखा। आपके जैसे बाबा तो हमने अपनी जिन्दगी में पहली ही बार देखे हैं। सुनकर तपस्वीजी ने कहाकि हमारे भक्त लोग बड़े बड़े शहरों में होते हैं मालवे के इन्दौर, उज्जैन आदि शहरों में हमारे बहुत भक्त हैं। इसी तरह इधर दक्षिण में भुसावल, जलगांव, चालीस गांव आदि नगरों में भी हमारे भक्त लोग रहते हैं। हम साधु लोग उन लोगों को धर्मोपदेश सुनाने के लिए इधर उधर घूमते फिरते हैं। अभी हमारा विचार खान देश और दक्षिण की तरफ जाने का हुआ तो हम इधर निकल आये। परन्तु रास्ते में सुना कि सड़क के बड़े रास्ते पर होकर जाने वालों को आसेरगढ़ की छावणी के पास १० दिन रोक रखते हैं और प्लेग के रोग के टीके आदि लगाते हैं। हमारा जैन साधु का जो धर्म है हम उसके अनुसार वैसा कर नहीं सकते। इसलिए हमने यह जंगल का रास्ता लेना पसन्द किया। हम लोग अपने साथ खाने-पीने का कुछ भी सामान नहीं रख सकते न पैसा कोड़ी ही हम अपने पास रखते हैं। गांव में जाकर हम किसानों आदि के वहां से भीक्षा मांग लाते हैं और उस पर अपना गुजारा करते हैं। हमारे लिए खास बनाया हुआ भोजन भी हम नहीं लेते और कोई लाकर हमें भोजन दे तो उससे भी नहीं लेते है। इत्यादि कुछ साधु धर्म की बातें जब उस थानेदार ने सुनी तो वह मन में कुछ प्रभावित सा हुआ और कहने लगा कि आप हमारे यहां से थोड़ा बहुत दूध लेलें और कुछ थोड़ी बहुत रोटियां भी लेकर खालें फिर आप लोग यहां से निकल जायें। एक चौकीदार हमारे उस पड़ाव की चौकी पर जाने वाला है उसके साथ आप चले जायें कोई शाम को ३-४ बजे आप उस गांव को पहुँच जायेंगे।

हमने उस थानेदार के वहां जो मकान के बाहर गरम पानी होरहा था और उसके स्नान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि करने के लिए एक बर्तन में निकाल रखा था उसको एक बड़े पात्र में भर लिया। मूर्ति पूजक साधुओं के पास तो पानी लेने के लिए मिट्टी के घड़े होते हैं। तथा लकड़ी के बने हुए वैसे ही बड़े आकर के घड़े नुमा पात्र होते हैं, जिसको वे साधु 'लोट' कहा करते है प्रायः वे साधु पानी इसी लोट में लाते हैं और विहार में भी इसी लोट में भर कर साथ ले जाते हैं पर हमारे सम्प्रदाय में केवल लकड़ी के खुले पात्र ही रखने का रिवाज था। इसलिए पानी लाने करने में कुछ असुविधा का अनुभव होता रहता था।

हम शौच आदि क्रिया से निवृत हुए और फिर उस थानेदार के वहां से थोड़ा सा दूध लिया और छाछ का बड़ा सा पात्र भर लिया। ५–७ जुवारी की रोटियां और कुछ बैंगन का साग ले लिया। झोंपड़ी में बैठकर हमने वह आहार कर लिया। मन में खयाल रहा कि शाम तक कुछ खाने–पीने के लिए मिलने वाला नहीं है। उससे पर्याप्त मात्रा में भोजन कर लिया और ऊपर छाछ पीकर परम तृप्तो का अनुभव किया। कुछ पानी भी साथ में रखने के लिए दो–तीन पात्रों में ले लिया। हम अपने कपड़े आदि शरीर पर लपेट कर चलने के लिए झोंपड़ी में से बाहर निकले। इतने में एक चौकीदार जो हमारे रास्ते से अगले पड़ाव पर जाने वाला था, वह भी कपड़े आदि पहनकर थानेदार के पास जा खड़ा हुआ। थानेदार ने कोई कागज उसके हाथ में दे दिया और कुछ बातें कहकर उसे हिदायत दी गयी कि ये बाबा लोग उस गांव को जाना चाहते हैं सो इनको साथ ले जाना और रास्ते में कोई चौकीदार पूछे तो उसे कह देना कि इनको थानेदार साहब ने इस रास्ते होकर जाने की इजाजत दी है, और मुझे भी इनके साथ साथ चलने को कहा है। चौकीदार ने थानेदार को सलाम किया और वह अपने घर में जाकर अपनी औरत से कुछ कह कर, 'चलिये बाबाजी' ऐसा हमको कहता हुआ रास्ते पर चलने लगा। थानेदार ने भी नम्र स्वर में "नमो नारायण" कह कर हमको हाथ जोड़े और कहा कि आप निर्भय होकर चले जाइये रास्ते में कोई खतरा नहीं होगा इत्यादि जिस तरह हम कल चले उस तरह से आज भी चलने लगे। रास्ता प्रायः कल के जैसा ही था, उसी तरह एक के बाद एक पहाड़ो आती रही और हम चढ़ते उतरते और उनको लाँघते रहे। वैसे ही छोटे बड़े तीन-चार नाले रास्ते में आये। अन्दाजन चारेक माईल के फासले पर हमने एक अच्छी सी चट्टान पर बैठकर पानी पीया, दिन का आखिदशी पानी पी लीया। उस समय दिन के कोई बारह बजे होंगे, चौकीदार को हमने पूछा कि भैया अब कितने घण्टे का आगे रास्ता है तो वह बोला कि बाबाजी कम से कम चार घण्टे लगेंगे। आप जरा जल्दी जल्दी पैर उठाना हमने कहा भैया तुम जैसे चलोगे वैसे हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे। तब उसने कहा कि बाबाजी मैं तो इतना जल्दी चलता हूँ कि दो घण्टे में ही रास्ता पार कर सकता हूँ। मेरा तो हमेंशा का काम है पर आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ख्याल से मैं जरा आस्ते आस्ते चलता हूँ, इत्यादि कुछ बातें कहता हुआ वह चलने लगा और हम भी उसके साथ चले। कोई डेढ़-घण्टा जितना दिन बाकी था तब हम उस सतपुड़े के पर्वत श्रेणी की आखिरी पहाड़ो की चौटी पर पहुँचे। वहां से हमारे पड़ाव वाला गांव कोई २-२½ मील के फासले पर दिखाई पड़ा। पर्वतमाला समाप्त हो रही थी और आगे का कुछ समतल मैदान दिखाई देने लगा। दूर ५-७ मील के फासले पर बहती हुई ताप्ती नदी भी वहाँ से धुन्धली सी दिखाई दी। मुझे उस दृश्य को देखकर बहुत आनन्द आया। कोई १०-१५ मिनट वहीं खड़ा होकर उस रमणीय उपत्यका को मुग्ध भाव से देखता रहा, पीछे की ओर देखा तो वही घना जंगल और पर्वतों की ऊँची-नीची श्रेणियाँ दिखाई दे रही थी। बांयें बाजु दूर आसेरगढ़ का धुन्धला सा किला दिखाई दे रहा था। इस दृश्य को देखकर हमारे मन में कुछ सन्तोष हुआ कि चलो बड़ी घाटी पार करली।

शाम होते-होते उस रास्ते के आखिरी पड़ाव में हम पहुँच गये। चौकीदार ने कहा बाबाजी वह जो मकान दिखाई देता है वहीं हमारी चौकी है, मैं तो अब चौकी पर जाऊँगा और आप लोग यह थोड़ी सी दूरी पर स्थित गांव सा दिखाई देता है वहाँ चले जाईये। उस गांव में कुछ किसानों के और दो-तीन अगरवाल बनियों आदि के घर हैं सो आपको वहाँ ठहरने करने की जगह मिल जायेगी। यह अब खान देश की सीमा है इधर की भाषा भी कुछ और तरह की है, इत्यादि कुछ बातें कहकर वह चौकीदार अपनी चौकी की तरफ चला गया। हमने कुछ कृतज्ञता के भाव भरे शब्दों से उसको विदा किया।

उस गांव का नाम तो मुझे याद नहीं आ रहा है। छोटासा ही गांव था। कोई ४०-५० घरों की वस्ती थी किसानों का पहनावा निमाड़ के किसानों से भिन्न था, गांव में मराठे धनगर लोगों के दस-बीस घर थे, उनकी बोली भी आधी मराठी आधी नीमाड़ी जैसी थी। दो-तीन बनियों की छोटी दूकानें थी, वहां पर जाकर हमने कहा कि हम जैनियों के साधु हैं और यहां पर रात को ठहरना चाहते हैं कहीं कोई ऐसी जगह हो तो हमें बताइये जहाँ हम रात को ठहर जायें। सुनकर एक बनिया जो कुछ शिक्षित सा था उसने कहा कि गांव के बाहर नजदीक ही सरकारी चौरा है वहाँ आप ठहर सकते हैं। हम खूब थके हुए थे और अच्छी तरह से भूखे-प्यासे भी थे। इससे हम जल्दी जल्दी पैर उठाते हुए उस चौरे में, जिसको मराठी में चावड़ी कहते हैं जा बैठे और कपड़े आदि खोलकर जल्दी जल्दी प्रतिक्रमण करके निद्रा देवी की शरण में सुख से सो गए। सुबह होने पर प्रतिक्रमण करके बैठे हुए, तो पिछले दो-तीन दिनों की थकान से शरीर ऐसा जकड़ा सा मालूम दिया जिससे आगे चलने की हिम्मत न हुई इसलिए उस दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहीं ठहरकर विश्रान्ति लेना सोचा । घण्टे-डेढ़ घण्टे बाद बनियों तथा किसानों के घर जाकर पहले कुछ निर्वद्य पानी मांग लाने के लिए तपस्वीजी और बड़े शिष्य अचलदासजी निकले, प्रायः भिक्षा लाने का काम वेही दोनों गुरू-शिष्य किया करते थे। कभी कभी अचलदासजी और मुन्नालालजी गोचरी के लिए जाया करते थे, हम दोनों छोटे साधु केवल पात्र धोने आदि का काम किया करते थे, मैं जब तक उस साधु वेश में रहा तब तक कभी गोचरी लेने को नहीं गया। दूसरों के परिश्रम से मैं अपना पिंड भरता रहा और बैठा-बैठा कुछ न कुछ पढ़ता रहा।

तपस्वीजी पात्र में कुछ गरम पानी ले आये और कहाँ कहाँ रोटियाँ मिल सकती है उसका भी कुछ पता लगा आये। फिर वे दोनों गुरू शिष्य झोली लेकर बनियें और किसानों के वहां से कुछ रोटियाँ और छाछ मांग लाए, दोपहर के समय हमने आहार किया थकान मिटाने की दृष्टि से सारा दिन प्रायः विश्रान्ति ली। इस प्रवास में आहार प्रायः एक दफा ही किया करते थे, सायंकाल के आहार केलिए कोई अवसर नहीं होता था। संध्या समय हुने पर प्रतिक्रमण करके नवकार मंत्र स्मरण करते हुए निद्रा ली। पर कोई घण्टा-डेढ़ घण्टा रात बीतने पर हम जिस चौरे में सो रहे थे उससे प्रायः २००-३०० कदम के फासले पर कुछ अन्त्यज जाति के घर थे, उन लोगों ने एक बड़ा सा सुअर कतल किया उस पशु को कतल के समय ऐसी भयंकर चीख मेरे कान में पड़ी जिसको सुनकर मैं अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसा जघन्य कृत्य का कभी अनुभव नहीं किया था। पशु को कतल करने वाले बड़ी कुल्हाड़ी से उसका गला काट रहे थे। कोई ५-७ मिनिट तक यह चिल्लाहट मैं सुनता रहा, आखिर में वह कृत्य शान्त हुआ।

मैंने तपस्वीजी से पूछा कि यह सुअर की चिल्लाहट कैसे सुनाई देरही है? तपस्वीजी उस प्रदेश में पहले विचरे हुए थे, इसलिए महाराष्ट्र प्रदेश में बसने वाले ऐसे मांसाहारी अन्त्यज लोगों का उन्हें परिज्ञान था। मालवे की अपेक्षा दक्षिण मे ऐसे काफी लोग रहते हैं जो प्रायः मांसाहारी होते हैं दक्षिण की महार, माँग आदि ऐसी अन्त्यज वर्ग की जातियाँ है जो प्रायः सुअर का माँस अक्सर खाती रहती हैं ये लोग प्रसंग-प्रसंग पर छोटे-बड़े ऐसे सुअरों को खुले आम कुल्लहाड़ी से काटते रहते हैं, मुझे इसकी कोई कल्पना नहीं थी, इसलिए उस रात्रि में होने वाले इस प्रकार के जघन्य कृत्य का अनुभव मेरे मन में एक बहुत कालव्यापी दुःखद स्मरण अंकित हो गया। आज भी मुझे उस पशु की वे प्राण विदारक चीखें मेरे कान में मानों गुंज रही है ऐसा मुझे लगा करता है।

सुबह होने पर हम लोगों ने वहाँ से आगे चलने का उपक्रम किया, रास्ते में चलते समय मेरे मन को उस रात की घटना का वह दुखोत्पादक स्मरण बारम्बार सताता रहा। हम ५-७ मील का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहार कर एक गांव में पहुँचे । यों दो-तीन दिन चलने पर हम भुसावल के निकट पहुँचे । रेल्वे के बड़े पुल द्वारा ताप्ती नदी को पार कर हम भुसावल पहुँचे ।

सुबह और दोपहर को तपस्वीजी श्रावकों को व्याख्यान सुनाते रहते थे । उन वर्षों में जैन साधुओं का अर्थात् स्थानकवासी साधुओं का उस प्रदेश में विचरण बहुत ही कम होता रहता था । इसलिए साधुओं के तरफ लोगों का भक्तिभाव अच्छा होता था ।

भुसावल में रेल्वे का बहुत बड़ा कारखाना है जहाँ हजारों लोग काम करते हैं हम लोग शौचादि के निमित्त कभी-कभी कारखाने की ओर निकल जाते थे । उस बहुत बड़े कारखाने में मशीनों आदि का बड़ा शोर-शराबा होता रहता था । इसलिए मेरे मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यहाँ ऐसा शोर-बकोर क्यों सुनाई देता है ?

मैंने सहज भाव से मेरे पास आकर बैठने वाले कुछ युवकों से पूछा, तब उन्होंने कहा कि इस कारखाने में रेल के बड़े बड़े इंजिन और डिब्बे आदि तैयार होते रहते हैं और उसके लिए बड़े-बड़े यन्त्र आदि लगे हुए हैं । मेरे मन में इनको देखने की इच्छा हो आई, और मैंने उनसे पूछा कि क्या हम लोग उस कारखाने को देख सकते हैं ? तब उन लड़को ने कहा कि-कारखाने में जाने की इजाजत मिलने पर देख सकते हैं, और हमारे पिताजी आदि का सबध कारखाने के बड़े अफसरों से है, इसलिए वैसी इजाजत मिल जायेगी । मैंने तपस्वीजी से कहा कि मेरी इच्छा इस कारखाने को देखने की हो रही है । तब उन्होंने कहा कि ऐसा कारखाना हमने भी कभी नहीं देखा है, इसलिए अपन सब एक दिन देखने को चलें । फिर उस श्रावक भाई को साथ लेकर हम कारखाना देखने गए । पहली ही बार हमने वैसा कारखाना देखा जिसमें बड़े भारी यन्त्र और चक्र घूम रहे थे और सैंकड़ों लोग तरह-तरह की मशीनों पर बड़ी फूर्ति और होशियारी से काम कर रहे थे । बड़े बड़े बॉयलर जिनमें मणों कोयला झोंका जारहा था और उनमें स निकलती हुई आग की लपटों की गर्मी से आसपास काम करने वाले पसीनों से तरबतर दिखाई देते थे । कहीं कहीं बड़ी बड़ी लोहे की भट्टियों में से पिघलता हुआ लोहा निकल रहा था । और उससे रेल की पटरियां और पहिये आदि अनेक आकार-प्रकार की चीजें ढाली जा रही थीं । कहीं रेल के इंजिन जोड़े जा रहे थे तो कहीं माल गाड़ी के डिब्बे तैयार किये जाते थे । मकान की गर्मी को ठीक नियमित रखने के लिए जमीन के अन्दर बहुत बड़े बड़े पंखे लगाए गए थे जिनकी हवा से काम करने वालों को यथा योग्य आराम मिला करता था । कारखाना इतना बड़ा था कि जिसको पूरी तरह देखने के लिए तो दो-तीन दिन भी पर्याप्त नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते। हमने तो उसके कुछ मुख्य मुख्य ३-४ विभाग ही देखे और समय हो जाने पर हम वापस अपने स्थान पर चले आए, जीवन में ऐसे बड़े कारखाने के सुनने का भी कोई प्रसंग नहीं आया था इसलिए मुझे तो ऐसा भास हुआ कि हमने आज कोई अद्‌भुत जादू सा भरा हुआ काम देखा है। बाद के जीवन में तो जर्मनी जैप क्रप के कारखानें को भी देखने का मौका मिला और उसके आगे, भुसावल का यह कारखाना हाथी के आगे खरगोस के जितना, मालूम दिया। परन्तु जीवन में यह प्रथम दर्शन था। इसलिए उसका स्मरण चित्र सदैव मन पर अंकित रह गया। जैनसाधु के धर्म के आचार के मुताबिक तो ऐसा कारखाना जिसमें अग्निकाय, वायुकायु तथा कीड़े मकोड़े आदि त्रसकाय जैसे असंख्य जीवों का संहार होता हो, देखना अथवा देखने को इच्छा करना भी पाप कर्म का बन्द माना जाता है। उस जीवन चर्या में तो मैंने फिर कभी कोई वैसा कारखाना आदि देखने का कोई प्रसग प्राप्त नहीं किया। यहां तक की पुस्कें छापने वाली प्रिन्टिग मशीनों को भी देखने का प्रसंग नहीं लीया। मन में ये जिज्ञासा पिछले वर्षों में तो जरूर उत्पन्न होने लगी थी। कि ये छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकें कैसे छापी जाती हैं। इत्यादि !

कुछ दिन भुसावल में ठहरकर हमने आगे दक्षिण की ओर प्रयाण किया। जलगांव, पांचोरा होते हुए हम वाघली नामक एक कस्बे में पहुँचे। फाल्गुन के दिन थे, हम साधुओं ने वहाँ केश-लोच किया। वहाँ के श्रावक कुछ भावुक थे, और वहां पर किसी जैन साधु ने कभी चातुर्मास नहीं किया था इससे उन श्रावकों ने हमें वहाँ चातुर्मास करने के लिए आत्याग्रह किया। श्रावकों ने सुना था कि तपस्वीजी चातुर्मास में ५०-६० दिनों जैसी लम्बी तपस्या किया करते रहते हैं और इस कारण अनेक गांवों से सैंकड़ों श्रावक भाई-बहन उनके दर्शन के लिए आया-जाया करते हैं। इसलिए वाघली में चातुर्मास होने पर हमारे गांव में भी सैंकड़ों भाई-बहनों का आवा-गमन होगा और हमको उनकी भक्ति आदि करने का उतम प्रसंग मिलेगा। तपस्वीजी ने श्रावकों के आग्रह के कारण आने वाला चातुर्मास वहाँ करने का विचार किया और श्रावकों को अर्ध-सम्मति सी बताई। वहाँ से हम चालीस गांव पहुँचे।

चालीस गांव में मूर्तिपूजक साधु का दर्शन

चालीस गांव में शायद स्थानकवासी भाईयों के कोई घर नहीं थे वहाँ पर कपास पीलने की तीन-चार जीनींग फैक्टरियाँ थीं। जिनके मालिक कच्छी जैन भाई थे। वे कच्छी जैन भाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिपूजक आम्नाय वाले थे तो भी स्थानकवासी साधुओं का भी यथा योग्य आदर किया करते थे। हम लोग वहाँ पर फैक्टरी के एक मकान में जाकर ठहरे, ५-१० भाई-बहन व्याख्यान सुनने के निमित्त भी आए। दो-तीन दिन बाद वहीं एक मूर्तिपूजक आम्नाय के साधु भी विहार करते हुए आये, वे साधु प्रायः उन कच्छी भाईयों के परिचित थे। उनके साथ दो-तीन भाई-बहन थे तथा एक नौकर भी था जो उनके वस्त्र-पात्र पोथी पन्ना आदि उपकरण लेकर चलता था। अगले दिन उनमें का एक भाई चालीस गांव पहुँच कर वहाँ के भाईयों को सूचना दी की कल अमुक मुनिमहाराज यहाँ पधार रहे हैं, सो आप स्वागत आदि की व्यवस्था करें। तदनुसार कच्छी भाई जिनके आठ-दस परिवार वहाँ रहते थे उन्होंने मुनिमहाराज के स्वागत की तैयारी की। जिस लम्बे चालनुमा मकान में हम ठहरे थे, उसी मकान के एक अच्छे से कमरे में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। दो-चार ध्वजा-पताकाएं भी मकान के आँगन में बांध दी गई। हम जिस कमरे में ठहरे थे वह मामूलीसा कमरा था। उनके कमरे में जाने का रास्ता हमारे वाले कमरे के आगे होकर ही जाता था। हमारे और उनके कमरे के बीच में ५-६ कमरे और थे, जिनमें मालिकों का सामान भरा हुआ था। कमरों के आगे सात-आठ फुट चौड़ा, ऐसा लम्बा बरामदा था। बरामदे के दूसरे छोर पर जहाँ मुनिमहाराज के ठहरने का कमरा था, उनके आगे अच्छासा लकड़ी का पट्टा रख दिया गया। उसके उपर जरी, मखमल, रेशमी कपड़े आदि के बने हुए हुए चंदुये बांध दिये गए। बैठक की पीछे की ओर वैसी ही पछाइयाँ लगा दी गई। ठीक नौ बजे के करीब मुनिमहाराज फैक्टरी के बड़े द्वार पर पहुँचे, श्रावकों ने तो वहाँ से कुछ आगे जा कर सड़क पर उनका स्वागत किया। (जिसको गुजराती में सामैया कहते हैं) बैंड-बाजे के साथ उनका फैक्टरी में प्रवेश कराया गया। उस समय श्रावकों के सिवाय फैक्टरी के अनेक अन्यजन भी सम्मिलित हुए। बहनें गीत गाती हुई चल रही थीं। हम लोगों को जब यह हाल मालूम हुआ तो कुछ संकोच सा महसूस हुआ तो हम लोग अपने कमरे में एक तरफ किवाड़ कुछ टेढ़े कर बैठे-बैठे स्वाध्याय करने लगे। इतने में वे मुनिमहाराज मकान में पहुँच गये और श्रावकों के जय-जयकार के साथ हमारे मकान के दरवाजे के आगे होकर उनके स्थान पर गए। वहां पर कमरे में जाकर कुछ कपड़े आदि उतारे और फिर अपना एक अच्छासा आसन ले कर उस पट्टे पर आकर बैठ गये।

मुनिमहाराज का वर्ण गेहूँए रंग का था, शरीर अच्छा भरावदार था, कद मध्यम प्रकार का था। आवाज अच्छी और सुरीली थी सिर पर खासे केश थे और दाढ़ी मूंछ भी केशों से अच्छी भरी हुई थी। इससे मुझे आभास हुआ कि हम लोगों की तरह उन्होंने उन दिनों केश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोच नहीं किया था। उन्होंने अपना स्वागत करने वाले भाई-बहनों को मांगलिक पाठ सुनाया और १०-१५ मिनीट तक उपदेशात्मक व्याख्यान दिया। व्याख्यान की समाप्ति होने पर श्रावक भाईयों ने उपस्थित जनों को एक-एक नारियल और कुछ पेड़े आदि दिये। बाद में मुनिमहाराज अपने कमरे में गए वहाँ पर उनके भक्तों ने पहले से ही गरम पानी आदि की व्यवस्था कर रखी थी। फिर फैक्टरी के मालिक सेठ तथा अन्य भाई-बहनों ने मुनिमहाराज से गोचरी के लिए विनती की और तदनुसार वे झोली में पात्र आदि लेकर गोचरी के लिए गए थोड़ी ही देर में आहार लेकर आ गये। हमारे कमरे में भी आकर एक श्रावक भाई ने गोचरी के लिए कहा। हम में से तपस्वीजी और बड़े शिष्य अचलदासजी हमेशा के मुताबिक ५-७ घरों में आहार लेने के लिए गए। योग्य आहार लेकर आए और हम सबने अपने नियमानुसार आहार-पानी किया।

मैंने मूर्तिपूजक आम्नाय के साधु मुनि को इतने निकट से कभी नहीं देखा था। यतिवेष का तो मुझे ठीक-ठीक परिचय था। यति लोग जिस तरह रजोहरण (ओघा) सीसम का लंबा डंडा और लकड़ी के पात्र आदि रखते हैं तथा जिस तरह चद्दर शरीर पर लपेटते हैं उनका तो मुझे ठीक परिचय था। परन्तु मूर्तिपूजक साधु, जो खास कर संवेगी साधु कहलाते हैं, उनकी वेषभूषा का मुझे खास ज्ञान नहीं था। इस दृष्टि से हमारे ही पड़ौस में आकर ठहरने वाले और विशिष्ट प्रकार के स्वागत आदि समारोह पूर्वक आए हुए उक्त साधुजी को देखकर मेरे मन में कई प्रकार के विचित्रभाव उत्पन्न होने लगे। मालूम हुआ कि मुनिमहाराज धुलियानगर की ओर से आ रहे हैं और बरहाड़ स्थित अंतरीक्ष पार्श्वनाथ की यात्रा को जा रहे हैं। दूसरे दिन सुबह उनका व्याख्यान होना था इसलिए हमारे पास तो कोई भाई आए गए नहीं। हम लोगोंने सुबह ही वहाँ से अगले गांव की तरफ विहार कर दिया।

तपस्वीजी की इच्छा हुई कि कुछ वर्षों पहले दक्षिण के एक गांव में उन्होंने एकाकी रूप में चातुर्मास किया था और वहां के धनिक श्रावक ने उनकी तपस्या के निमित्त, आने जाने वाले दर्शनार्थी भाईयों के भोजन-पान आदि के लिए काफी खर्च किया था, वहाँ जाए। रास्ते में मनमाड, लासल गांव आदि स्थान आते थे, जहाँ कुछ दिन ठहरते हुए उस गांव में पहुँचे। गांव का नाम तो मुझे ठीक याद नहीं आरहा है, छोटा सा ही गांव था, और गोदावरी नदी के तट पर बसा हुआ था रेल्वे का स्टेशन होने से अनाज वगैरह की अच्छी मण्डी थी। उस गांव में दो-तीन घर ही मारवाड़ी ओसवालों के थे, दक्षिण में प्रायः अधिकतर मारवाड़ के ओसवाल लोग सब जगह थोड़ी बहुत संख्या में रहते हैं और व्यापार की कला में कुशल होने के कारण गांवों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में प्रायः वे ही अच्छे सम्पन्न माने जाते हैं। हम जब उस गांव में पहुँचे तो मालूम हुआ कि वह धनिक ग्रहस्थ तो मर चुका था परन्तु उसकी विधवा स्त्री व्यापार का सब काम अच्छी तरह चला रही थी। दो-तीन दिन ठहर कर हम वहाँ से नासिक आदि स्थानों में होते हुए घोटी और इगतपुरी तक पहुँचे। घाटी में भी तपस्वीजी ने एक चतुर्मास किया था इसलिए उन स्थानों में हम जैसे शिष्यों के परिवार के साथ एक दफे हो आने की इच्छा का होना स्वाभाविक ही था। चौमासे के दिन नजदीक आ रहे थे इसलिए वापस वाघली गांव को पहुँचने के इरादे से जल्दी-जल्दी विहार कर चौमासे के ८-१० दिन पहले वाघली पहुँच गए।

उस चौमासे में तपस्वीजी ने ६० दिन की तपस्या की और इस निमित्त दूर-दूर से सैकड़ों भाई-बहिन दर्शनार्थ आते जाते रहे। वाघली के चातुर्मास में मुझे मराठी भाषा के ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और मैं श्रावकों के लड़कों के पास से मराठी भाषा की प्रारम्भिक स्कूली पुस्तकें मंगवा कर मैं मराठी का अभ्यास करने लगा तब तक मैंने कोई ऐसी छपी हुई पुस्तकें नहीं देखी थीं। उस समय महाराष्ट्र में सामान्य व्यवहार के लिए "मोड़ी" लिपी का प्रचार था। उस लिपी में कुछ प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकें भी छपती थी सो कौतुहल वसात मैंने उस लिपि के भी पढ़ने का अभ्यास किया।

वाघली से अहमदनगर की ओर विहार

चातुर्मास के बाद तपस्वीजी की इच्छा हुई कि अहमद नगर जिले की तरफ उनके बड़े गुरू भाई चम्पालालजी रहा करते हैं उनसे मिलने के लिए जाएं। इसलिए हमने उस प्रदेश की तरफ विहार किया। पहले हम औरंगाबाद गए। वहाँ पर उस समय हैदराबाद के नवाब का राज्य था और मुसलमानों की काफी बड़ी संख्या थी। एक बाजार ऐसा देखने में आया जहाँ पर कसाइयों की दुकानें अधिक थी, परन्तु उनकी दुकानों के पास ही कुछ ओसवाल बनियों की भी परचुनी दुकानें थी। मुसलमान, कसाई की दुकान से एक हाथ में मांस मिट्टी लेकर पास के बनिये की दुकान से खाने-पीने की अन्य चीजें खरीदा करते थे। उन बनियों का ऐसा व्यवहार देख कर मेरे मन में बहुत घृणा उत्पन्न हुई। पैसे ही को परमेश्वर समझने वाले उन बनियों को उसका कभी कोई खयाल नहीं आता था। मेरे मन में उन बनियों के प्रति एक प्रकार का तिरस्कार भाव हुआ। यद्यपि उनमें का कोई कोई भाई हमारे पास आकर व्याख्यान सुना करते थे और मुँह पर मुँह पती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बांधकर सामायिक भी किया करते थे। उनके दिल में शायद ऐसा खयाल होगा कि धर्म का, व्यवहार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ५-७ दिन औरंगाबाद में ठहर कर दौलताबाद होते हुए हम एक उस छोटे गांव में जाकर रुके जहाँ से सुप्रसिद्ध एलोरा की गुफाएं लोग देखने जाया करते हैं हम भी दूसरे दिन एलोरा की गुफाएं देखने गए। यद्यपि मुझे उस समय उन गुफाओं का कोई इतिहास मालूम नहीं था कि किसने, कब और कैसे ये बड़ी-बड़ी गुफायें बनाई। उन गुफाओं को देखने के लिए सदैव अनेक लोग आते रहते हैं। हमने भी उन्हीं की तरह उन गुफाओं को खूब घूमर कर देखीं और पहाड़ की बड़ीर चट्टानें काट-काट कर उनमें ऐसे बड़े मन्दिर तथा बड़ी मूर्तियाँ आदि किस तरह बनाई गई होंगी, इसका आश्चर्य मुग्ध होकर अवलोकन करते रहें। कोई ४-५ घण्टे उन गुफाओं को देखने में व्यतीत कर हम समय हो जाने पर वापस उस गांव में आगए और रात्रि वहीं व्यतीत की। दूसरे दिन वहाँ से फिर विहार कर कई गांवों में परिभ्रमण करते हुए हम वारी नामक गांव में गए।

वारी गांव का परिचय

वहाँ पर तपस्वीजी के गुरु आम्नाय वाली चार-पाँच साध्वियाँ थी उनको दर्शन देने की दृष्टि से ही तपस्वीजी ने वहाँ जाना पसन्द किया था। उन साध्वियों में एक साध्वी उसी गांव के एक अच्छे सम्पन्न कुटुम्ब की थी जो बाल विधवा हो जाने पर साध्वी बन गई थी। वह मराठी की ६-७ किताबें पढ़ी हुई थीं और उसी प्रदेश में विचरते रहने कारण मराठी भाषा बोलने का उसको अच्छा अभ्यास था। वारी गांव एक छोटा सा कस्बा था जहाँ ओसवाल जैनियों के १०-१२ घर थे पर वे सब आर्थिक दृष्टि से अच्छे सम्पन्न से थे। वारी गांव 'पेठ' अर्थात् मण्डी की दृष्टि से प्रसिद्ध था। वहाँ पर एक विदेशी व्यापारिक कम्पनी का अड्डा था। यह कम्पनी (राली ब्रदर्स) नाम से दक्षिण में काफी मशहूर थी और इस कम्पनी की कई जगह ऑफिसें थीं। यह कम्पनी खासकर के अनाज की खरीदी किया करती थी और हजारों मण अनाज विदेशों में भेजा करती थी। वारी में इसके दो-तीन बड़े-बड़े गोदाम बने हुए थे जो वहाँ रहने वाले दो-तीन जैन धनिकों ने बनवाये थे। अनाज का संग्रह भी प्रथम ये लोग ही करते थे। और फिर उनसे उक्त कम्पनी बड़े जत्थे में अनाज खरीद लेती थी। इसलिए वहाँ के जैन भाईयों का व्यापार धन्धा बहुत अच्छा चल रहा था। गांव के पास में ही दोंड-मनमाड़ रेल्वे लाईन का छोटा सा स्टेशन था वहाँ से सीजन में अनाज के हजारों बोरे बम्बई आदि स्थानों में भेजे जाते थे। मण्डी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कारण गांव का छोटा सा बाजार भी खूब चौड़ा और साफ सुथरा लगता था। जैन व्यापारियों के सिवा १०-२० घर अन्य दक्षिणी लोगों के थे। यह कस्बा गोदावरी नदी के तट पर बसा हुआ था। इसके सामने वाले तीर पर संवच्छर नामक अच्छा सा पुराना कस्बा था। जहाँ पेशवाओं के समय में किसी जागीरदार का ठिकाणा था। इस गांव के कारण उस तालुके में वारी संवच्छर ऐसे संयुक्त नाम से वह स्थान पहचाना जाता था। उस गांव वाले श्रावकों ने तपस्वीजी की तपस्या की महिमा सुनकर ही हमें वहाँ पर चातुर्मास करने का अत्याग्रह किया और उन साध्वियों का भी वहीं चतुर्मास रहने का विचार हुआ। इसलिए उन्होंने भी तपस्वीजी को वहाँ चातुर्मास करने की प्रार्थना की। मुझे भी उस गांव की स्थिति अच्छी लगी, इसलिए मैंने भी वहाँ चातुर्मास करने का अपना विचार प्रदर्शित किया। इस प्रकार कोई महिना भर हम वारी गांव में रहे। फाल्गुन मास आ जाने पर उस काल का केश-लोच भी वहाँ किया। होली के दिनों के बाद हमने वहाँ से अहमद नगर की तरफ जाने का प्रयाग किया।

कई दिनों के विहार बाद हम लोग वाम्बोरी नामक गांव में पहुँचे। उन दिनों चम्पालालजी वहाँ ही थे। उनके साथ एक बड़ी उम्र का शिष्य भी था, जो पूर्वावस्था में कच्छ का रहने वाला था। तपस्वीजी अपने बड़े गुरू भाई से बहुत आनन्द पूर्वक मिले। चम्पालालजी को बहुत हर्ष हुआ। चम्पालालजी की व्याख्यान शैली का परिचय हम ऊपर लिख चुके हैं। वाम्बोरी में उनका व्याख्यान सुनने के लिए कई जैन-अजैन भाई आया करते थे, जिसका प्रभाव मेरे मन पर अच्छा पड़ने लगा। कुछ दिन बाद चम्पालालजी के साथ हम राहूरी गांव गये। वहाँ पर हमारा अमोलक ऋषिजी नामक साधु महाराज से मिलना हुआ। वे साधु महाराज स्थानवासी सम्प्रदाय में एक अच्छे विद्वान् साधु माने जाते थे। उनका नाम हमने कई दफे सुन रखा था। हमारा साधु सम्प्रदाय भिन्न था और वे ऋषि सम्प्रदाय वाले कहलाते थे। उनके गुरू त्रिलोक ऋषिजी थे, जो अहमदनगर आदि के प्रदेश में अधिकतर विचरा करते थे। त्रिलोक ऋषिजी अच्छे कवि थे, उन्होंने अनेक प्रकार के स्तवन, सज्जाय (स्वाध्याय) ढाल, चौपई आदि अनेक छोटी-बड़ी रचनाएं देश भाषा में की थी। अमोलक ऋषिजी ने दक्षिण हैदराबाद में रह कर जैन सूत्रों के छपवाने का सब प्रथम प्रयत्न किया था। हम साधुओं का परस्पर वन्दन व्यवहार नहीं था, तथा आहार पानी का भी परस्पर लेन देन का सम्बन्ध था, तथापि सौमनस्य भाव ठीक था। इसलिए यह साधु मिलन मुझे बहुत आनन्द दायक लगा। मैं तो बिल्कुल नया और अधिक जानकार नहीं था तथापि उनके प्रति मेरे मन में काफी विनम्र भाव उत्पन्न हो गया था।

प्रसंगवश एक बार आचारंग सूत्र के किसी पाठ के विषय में कोई चर्चा चल पड़ी। अमो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक ऋषिजी को वह पाठ कहाँ पर है इसे देखने की आवश्यकता उत्पन्न हुई । हमारे पास आचारांग सूत्र की एक टब्बार्थ वाली पोथी थी, जिसे उन्होंने देखना चाहा। बहुत देर तक वे उस पोथी के पन्ने उलटाते रहे तब मैंने कहा कि आप मुझे इस पोथी को दे दें, जिससे मैं वह पाठ जल्दी निकाल सकूं । यूं आचारांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कंध तो मेरे कंठस्थ था परन्तु दूसरा श्रुतस्कंध भी मैंने कुछ२ पढ़ा था । इसलिए मैंने तुरन्त ही वह सूत्र पाठ निकालकर अमोलक ऋषिजी के हाथ में रखा तब वे यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए और मुझे आगमों के अध्ययन की खास हिदायत की । परन्तु तपस्वीजी के साथ रहने से मुझे विशेष ज्ञान की प्राप्ति की कोई आशा नहीं थी। कई दिनों तक हमारा उस गांव में उनके साथ समागम में रहना हुआ । उन्होंने जो जैन सूत्रों का मुद्रण कार्य कराया। उसकी विशेष जानकारी तो मुझे बहुत वर्षों बाद हुई । उस समय तो मैं इतना ही जान सका कि ये जैन सूत्रों के बहुत अच्छे अभ्यासी हैं । चम्पालालजी और तपस्वीजी उनके उतने प्रशंसक नहीं मालूम दिये। वे दोनों गुरू भाई आपस में बातें किया करते थे कि अमोलक ऋषि शिथिलाचारी साधु हैं, इत्यादि ।

वहाँ से हम चम्पालालजी के साथ विहार करते हुए अहमदनगर गए। कुछ दिन साथ रह कर चातुर्मास के दिन नजदीक आने पर हम लोगों ने वापस वारी नामक गांव की तरफ विहार किया । चम्पालालजी वहीं अहमदनगर में रहे। येवला आदि स्थानों में होते हुए आषाढ़ महिने में हम वारी पहुँचे। येवला के पास एक गांव में जहाँ कुछ श्रावकों के १०-१५ घर थे और वहाँ कभी कोई साधुओं का आना जाना नहीं होता था, उस गांव वालों ने किसी साधु या साध्वी का चातुर्मास कराने की विनती की तो मुन्नालालजी की इच्छा वहाँ पर अलग चातुर्मास रहने की हुई। तपस्वीजी ने उनकी बहुत आग्रहवाली इच्छा को जानकर वहां चातुर्मास रहने की आज्ञा देदी । इससे वे पिता-पुत्र दोनों वहां रह गए । इस प्रकार वारी के चातुर्मास में हम तीन ही साधु रह गए ।

वारी गांव का चातुर्मास

वहां ४-५ साध्वीयों का समुदाय भी था और श्रावक भी कुछ विशेष भावुक थे इसलिए उस चातुर्मास में हमको किसी प्रकार की न्यूनता महसुस नहीं हुई। चातुर्मास के निवास के लिए वहां पर जो एक अच्छा बड़ा अनाज के संग्रह निमित गोदाम बना हुआ था। वह पसंद किया गया । मकान खासा लंबा-चौड़ा था, बीच में एक बड़ा दरवाजा था, अगल बगल में तीन-तीन दुकानें थी और उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीछे विशाल दालान था जिसमें हजार आदमी एक साथ बैठ सके ऐसी खुली हवादार जगह थी। हम साधुओं के ठहरने के लिए एक तरफ का दुकानों का भाग था। दूसरी तरफ के भाग में साध्वीयों को जगह दी गई और जो कोई श्रावक भाई बहन दर्शनार्थ आवें उनके भी ठहरने की व्यवस्था उस तरफ की गई। चातुर्मास के प्रारंभ होते ही ५ दिन बाद तपस्वीजी ने ६५ दिन की लंबी तपस्या का पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान लीया। उपर हम कई जगह कह आए हैं कि तपस्वीजी चातुर्मास में हमेशा ५०-६० दिनों जैसी लंबी तपस्या किया करते थे। इस वर्ष उन्होंने ६५ दिन अर्थात २ महिने और ५ दिन जैसे लंबे समय के उपवास करना निश्चित किया। ५-१० दिन बीतने पर श्रावकों ने तपस्या विषयक बड़ी पत्रिकाएं छपवाकर अनेक गांवों में जैन भाइयों को भिजवा दी। इसलिए धीरे-धीरे गांवों से छुटकर भाई-बहन तपस्वीजी के दर्शनार्थ आने शुरु हो गये। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते त्यों-त्यों लोग अधिक संख्या में आने लगे। आने वाले भाई बहन २-२, ४-४ दिन वहां ठहरते, जिनकी गांव वाले श्रावक भाई बड़े उत्साह पूर्वक भोजन आदि द्वारा सेवा करते थे। तपस्वीजी के अनुसरण में जो बडी साध्वीजी वहां थी उनने भी ३५ दिन के उपवास करने आरंभ किये, इसी तरह एक अन्य विधवा बहिन भी जो उन साध्वियों के संसर्ग निमित्त वहां दूसरे गांव से आकर रही थी उसने भी एक महिने के उपवास करना निश्चित किया। आहार करने वाले हम दो साधु अर्थात अचलदासजी और मैं दोनों गुरुभाई रहे। अचलदासजी हमेशा श्रावकों के यहां जाकर यथा योग्य आहार पानी बहर लाया करते थे। हमने भी दिन में एक ही बार आहार करने का नियम ले लिया था। तपस्वीजी सदैव प्रातः घंटा डेढ़ घण्टा व्याख्यान दिया करते थे, उनके पास व्याख्यान में पट्टे पर अचलदासजी बैठा करते थे। मैं उस दुकाननुमा कमरे में अकेला बैठा-बैठा अपना स्वाध्याय करता रहता था। कभी-कभी साध्वीजी की दो-तीन शिष्याएं भी वहां आकर बैठ जातीं और मुझसे कुछ थोकड़े आदि का पाठ लिया करतीं।

बीच-बीच में उनको दशवैकालीक के प्रथम के ४ चार अध्ययन भी मैं पढ़ाया करता था और साथ में टब्बार्थ भी समझाया करता था। दोपहर के बाद तपस्वीजी उस बड़े दालान वाले खुले मकान में आसन लगाकर बैठ जाते थे। और दर्शनार्थ आने वाले भाई-बहनों से विविध प्रकार की बातें-चीतें किया करते थे बड़ी साध्वी भी अपनी एक शिष्या के साथ आकर बैठ जाती थी। मेरा मन मराठी भाषा सिखने में लगा हुआ था। मैं सोचता था कि जिस तरह चम्पालाल जो मराठी भाषा में व्याख्यान देते रहते हैं और तुकाराम, नामदेव आदि के अभंगों, पदों आदि को गा गा कर सुनाया करते हैं उसी तरह मैं भी मराठी भाषा में अच्छी तरह व्याख्यान देने का अभ्यास करूं। इसलिए मैं मराठी की छोटी-छोटी पाठ्यपुस्तकें लड़कों से मंगवा कर पढ़ता रहता था। मेरा ऐसा विचार जानकर उन छोटी साध्वियों ने मेरे साथ मराठी में ही वार्तालाप करना शुरु किया। परंतु मेरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चार उतने शुद्ध नहीं होते थे इसलिए वह एक छोटी साधवी जो मराठी बहुत अच्छा पढ़ना-बोलना जानती थीं उसने मेरे उच्चारों को शुद्ध बनाने का, शिक्षिका का कार्य शुरु किया। यूं वह मेरे से उम्र में भी कुछ बड़ी थी और दिक्षा भी मेरे से पहले ही ली थी परन्तु मैं गुरु पद का धारक होने के नाते उसके मन में कुछ संकोच हुआ करता था।

वारी में अज्ञात शिक्षक से स्वल्प समागम

उन्हीं दिनों एक महाराष्ट्रीय शिक्षक भाई जो उसी गांव के रहने वाले थे और कहीं बड़े गाँव में एक स्कूल के अच्छे से शिक्षक थे उनसे मेरा मिलना हुआ। उन्होंने गांव के जैन भाइयों से सुना कि यहां पर एक बड़े जैन साधु चातुर्मास रहे हुए हैं और उन्होंने ६५ दिन जितने लम्बे उपवास वाली तपस्या शुरु की है इसलिए वे भी, और लोगों की तरह तपस्वीजी के दर्शनार्थ आए। श्रावकों के लड़कों से उनको मालूम हुआ कि मैं मराठी भाषा का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं तो वे अपनी सहज भाव की जिज्ञासा से मेरे पास आकर बैठे। उनको जैन साधु की चर्या का विशेष परिचय नहीं था। परंतु एक शिक्षक होने के नाते मुझसे कुछ प्रश्न पूछने लगे। मैंने जो कुछ दो चार बातें उनसे कहीं तो वे कहने लगे कि यदि आपको कोई संकोच न हो तो मैं कुछ आपके आचार-विचार के बारे में अधिक जानना चाहता हूं सो मैं कभी-२ आकर आपसे ऐसा वार्तालाप करना चाहता हूँ।

मुझे उनकी बातचीत की शैली आकर्षक लगी और मुझे लगा कि मैं भी उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ यह सोच कर मैंने उनसे सहर्ष कहा कि आप जरूर मुझसे ऐसा वार्तालाप कर सकते हैं।

हमारे साधु धर्म के आचार के मुताबिक हम किसी ग्रहस्थ का ऐसा नहीं कह सकते कि आप अवश्य आते रहिये, इससे हमको भी प्रसन्नता होगी और हमें भी कुछ जानने को मिलेगा इत्यादि। फिर वे कई दिनों तक मेरे पास नियमित घंटा-दो घंटा आने लगे और खास करके जैन धर्म के बारे में बहुत सी बातें पूछते रहे। उनको मैंने पूछा कि मराठी भाषा का ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये किन पुस्तको का वाचन करना चाहिये ? तब उन्होंने पूछा कि आपको रुचो किस विषय को खास जानने की रहती है ? मैंने सहज भाव से कहा कि मुझे देश और धर्म का इतिहास जानने की अधिक जिज्ञासा रहती है, तब उन्होंने प्रारम्भ में देश का इतिहास जानने के लिए दो चार छोटी पुस्तकों के नाम बतलाए। मैंने कहा मुझे राजपूत जाती का इतिहास जानने की अधिक इच्छा रहती है। मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह तो उनको नहीं बताया कि मेरा जन्म किस जाती में हुआ है परन्तु मेरी जन्म भूमि राजपुताने में होने से मैं उस देश का इतिहास पढ़ना चाहता हूँ ऐसा मैंने उनसे कहा। फिर शिक्षकजी ने स्वयं दो-तीन मराठी की इतिहास की पुस्तकें ला दी, जिनमें एक शिवाजी के इतिहास विषय में थी, दूसरी राजपूतों के इतिहास विषय की थी। मैंने उनमें से सबसे पहले राजपूताने के इतिहास विषयक पुस्तकों को पढ़ना शुरू किया। इसमें चौहान, परमार, राठौड़, गहलोत, प्रतिहार आदि कई राजपूत वंशों का संक्षिप्त में इतिहास दिया गया था। इतिहास विषय ज्ञान की मेरी कोई पूर्व भूमिका नहीं थी और नहीं, मैंने कभी कोई ऐसी व्यवस्थित ढंग से लिखा गई पुस्तक देखी या सुनी थी। उस पुस्तक के पढ़ने से मेरे अन्धकारमय मन में, जैसे किसी अन्धेरी कुटिया में मिट्टी के दिये के धुन्धले प्रकाश जैसा कोई नया आभास होने लगा, वे शिक्षक राष्ट्र प्रेमी थे। उन दिनों महाराष्ट्र में बंग-भंग को लेकर समाचार पत्रों में अंग्रेजों की नीति के विरुद्ध बहुत से उग्र विचारों के लेख छपा करते थे उनमें स्व. लोकमान्य तिलक के मराठी, केसरी पत्र का विशिष्ट स्थान था, उस पत्र में उत्तेजनात्मक अनेक राजनीति सम्बन्धित लेख छपा करते थे। एक दिन वे शिक्षक मेरे पास आये तो उनके हाथ में केसरी पत्र के दो चार पुराने अंक थे। उसमें किसी विद्वान का लिखा हुआ एक लेख छपा हुआ था। जिसमें यह बताया गया था कि किस तरह अंग्रेजों ने अपनी राजनीति की कुटिल चालों से राजपूताने के राजपूत राज्यों का निःसत्व बनाया और महाराष्ट्र में मराठों की राज्य सत्ता को नष्ट किया इत्यादि। शिक्षकजी ने केसरी पत्र के वे ३-४ अंक मुझे दिये और बोले कि इसके पढ़ने से आपको मराठी भाषा का भी ठीक परिचय होगा और देश के इतिहास की भी कई बातों का ज्ञान मिलेगा। फिर शिक्षकजी ने मुझे लोकमान्य तिलक के बारे में कुछ विशेष परिचय कराया और उनके द्वारा देश में चल रही राजकीय घटनाओं का भी पूर्व इतिहास समझाया। उनको लगा कि मेरी रूचि कुछ इस विषय में जानने में जागृत हो रही है और उत्सुकता पूर्वक मैं उनकी बातें सुनता रहता हूँ। इसलिए वे दो-तीन घण्टे मेरे पास बैठे रहते और देश तथा धर्म के विषय के अनेक विचार प्रदर्शित करते रहते थे। उनकी ये सब बातें सुनकर मेरे अन्धकार पूर्ण अज्ञान मस्तिष्क में कोई नई आभा की सुक्ष्म किरणें प्रवेश कर रही हो ऐसा प्रतिभास होने लगा। मुझे अभी तक ज्ञान के उस क्षेत्र का कोई परिचय नहीं हुआ था। अभी तक जो कुछ मैंने थोड़ा बहुत जाना था उससे मेरे मन में जैन आगमों का और जैन धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले आचार विचारों का अध्ययन करना ही जीवन का मुख्य लक्ष्य बना हुआ था। इसके पहले मुझे इन शिक्षक जैसे किसी सुपठित पुरूष का कोई समागम नहीं हुआ था। मेरी जिज्ञासा को जानकर उन शिक्षक ने मुझे दो चार मराठी की ऐसी छोटी पुस्तकें लाकर दी, जिनमें बंगाल के राजा राममोहनराय, स्वामी विवेका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्द, बाबू अरविन्द घोष तथा कुछ क्रान्तिकारी पुरूषों की जीवनियाँ थी । मैं उन पुस्तकों रस पूर्वक ध्यान में पढ़ने लगा, हम साधु लोग न कभी किसी अखबारों को हाथ में लेते और न कभी पढ़ते ही थे तथा ऐसे विषयों की न कोई पुस्तकें ही देखी थी और न पढ़ी थ जीवन में पहली ही बार इस समय कोई अखबार देखने में आया और वह भी मराठी का सु सिद्ध केसरी पत्र ! १०-१५ दिन के बाद वे शिक्षक तो अपने स्थान पर चले गए पर उन उस अल्पकालिन समागम ने मेरे मानस क्षेत्र में ऐसे बीज डाल दिये जो आगे चलकर अनेक रू में अंकुरित हुए और मेरे जीवन क्रम में विशिष्ट परिवर्तन करने वाले बनें। उन शिक्षक का मुझे नाम ही मालूम रहा और न कभी उनकी कोई विशेष स्मृति ही हुई केवल मन में इतना हाअस्पष्ट स्मरण अंकित हो गया कि उनके समागम से मेरे मन का रूढ़ लक्ष्य विचलित होने लगा ।

जिस एक बाई ने बड़ी साध्वी के साथ एक महिने का उपवास करना आरम्भ किया था उसकी बड़ी करूण कहानी मेरे जानने में आयी । वह बाई जो उक्त छोटी साध्वी थी उसकी ननन्द होती थी। उसके पिता ने एक अच्छे लखपती धनिक के साथ उसको ब्याह दी थी, जिसकी उम्र ५५ वर्ष से अधिक थी और जो क्षय रोग से पीड़ित था। उस धनिक की पहली स्त्री कुछ वर्ष पहले मर गई थी और वह निःसंतान था। उसके वृद्ध माता-पिता मौजूद थे, उन्होंने जानते हुए भी कि हमारा लड़का क्षय रोग से पिड़ीत है और कुछ ही दिनों का मेहमान है। तब भी उन्होंने किसी प्रकार अपना लगाव लगाकर उस लड़की के माँ-बापों को समझा बुझा कर उसकी शादी करवादी । माँ-बाप जानते थे तो भी बड़े सेठ के घर में लड़की जायेगी और उसके धन का कोई खास हकदार न होने से लड़की ही मालिक बन जायेगी इस प्रकार की कुस्सीत भावना से उस लड़की का ब्याह कर दिया गया। लड़की काफी समझदार थी और मराठी ७-८ किताबों तक पढ़ी हुई थी बहुत स्वरूपवान और सुशील स्वभाव की थी परन्तु ऐसी अबोध बालाओं की रूढ़ी प्रिय और नितान्त विचार हीन माता-पिताओं के सामने क्या चल सकता है ? कोई ९ १० महिने बाद उस लड़का का वह पति उसे निराधार छोड़कर स्वर्ग को चला गया । महिनों तक वह लड़की अपने दुर्भाग्य को कोसती रही और दिन रात करूण क्रन्दन करती रही उसका न खाना-पीना अच्छा लगता था न किसी से वह बात-चीत ही करती थी। जब माँ पिता ने उसे अपने यहाँ ले जाना चाहा तो वह साफ-इन्कार हो गई। वृद्ध सासु श्वसुर जरा समझदार थे और कुछ धार्मिक भाव वाले भी थे इसलिए उन्होंने सोचा कि कहीं ऐसे साधु सन्त के पास ले जाया जाय जिससे इसके मन को कुछ शान्ति मिले । उन्होंने जब सुना कि वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांब में तपस्वीजी महाराज का चातुर्मास है और उन्होंने लम्बी तपस्या करनी शुरू की है तथा वहाँ पर कुछ साध्वियाँ भी है जिनमें उस लड़की की एक भाजाई भी है और बड़ी साध्वीजी ने भी ३५ दिन के उपवास शुरू किये हैं तब वे लोग उस बाई को लेकर वारी में आए और वहाँ पर उसको छोड़कर कुछ दिन दूर रहने की दृष्टि से वे वापस अपने गांव चले गये। वह बाई उन साध्वियों के पास ही रहने लगी और उसकी जो भोजाई साध्वी थी उसने उसको अनेक प्रकार का सांत्वना देनी शुरू की। धीरे धीरे उस बाई का मानसिक वातावरण बदलने लगा और वह कुछ सामायिक आदि धर्म क्रियाएं करने में लगने लगी। उन साध्वियों के साथ रहते हुए उसके मन में भी हुआ कि मैं भी क्यों न ऐसी तपस्या करूं जिससे मेरे कर्मों का क्षय हो जाय। ऐसा विचार कर उसने भी एक महिने के उपवास करने आरम्भ किये। उसके इस प्रकार १ महिने के उपवास की बातें सुनकर अन्य रिश्तेदार भी उसकी खबर करने आने लगे। इस प्रकार श्रावण-भादवे के दिनों में में वारी में एक अच्छा धार्मिक एवं तपस्या का वातावरण जमा रहा।

एक हिन्दु सन्यासिनी का आगमन

एक दिन हिन्दु सन्यासिनी के जैसा भगवा भेष धारण की हुई प्रौढवयवाली और दिखने में सुशील ऐसी एक महिला हमारे उस धर्म स्थान में आयीं उसने गले में रुद्राक्ष की माला पहन रखी थी, और शरीर पर भगवें रंग की लंबी कफनी पहन रखी थी —हाथ में वैसा ही भगवे रंग का बड़ा सा झोला था जिसमें उसके कुछ कपड़े, पानी पीने का लोटा आदि सामान था। एक बगल में कुछ छोटा सा बींटा था जिसमें ओढने आदि के कंबल जैसे दो-चार वस्त्र थे। मैं दोपहर के समय उस दुकाननुमा कमरे में बैठा हुआ उन साध्वियों को कुछ पढा रहा था और दो तीन बहनें भी वहां पर बैठी हुई थी। रेल्वे स्टेशन से उतरकर वह सन्यासिनी सी महिला हमारे सामने दुकान के आगे चौंतरे पर आकर बैठी, दो चार मिनिट तक वह चुपचाप बैठी रही और मैं जो उन साध्वियों को कुछ पढा रहा था और उसको वह शांत मन से सुनती रही। मेरे मन में हुआ कि यह कौन बाई हैं? तब मैंने धीरे से उससे पूछा कि क्यों माईजी तुम यहां किस लिए आकर बैठी हो। तब वह धीरे से बोली कि मैंने सुना है कि यहां कोई साधु महाराज ६५ दिन के लंबे उपवास कर रहे हैं तथा कुछ बहनें भी ऐसे लम्बे उपवास कर रही हैं। मैंने गाड़ी में बैठे हुए कुछ लोगों से ये बातें सुनी तब मेरे मन में हुआ कि मै भी ऐसे तपस्वीजनों के दर्शन करूं और उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त करूं, इत्यादि कुछ बातें महिला ने कही जिनको सुनकर मेरे मन में कुछ विशेष विचार आने लगे। मैंने उनसे पूछा कि माईजी आप कहां से आरही हैं और कहां जाना चाहती हैं? तथा आपने यह भगवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेष क्यों धारण किया है और कहां की रहने वाली हैं ? तब उसने कहा कि मैं हरद्वार की तरफ से आ रही हूँ और इधर आगे दक्षिण में रामेश्वर की यात्रा करने जा रही हूँ । मेरी जन्म भूमि बंगाल है जहां पर परमहंस, स्वामी रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुष हो गये हैं । मैंने स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता के आश्रम में कुछ शिक्षा पाई है । मैंने अंग्रेजी की भी उच्च शिक्षा प्राप्त की है और बाबु अरविन्दघोष जैसे देशभक्त पुरुषों के अनेक व्याख्यान सुने हैं । इससे मेरे-मन में गृहस्थ जीवन में न पड़कर सन्यास धर्म की दीक्षा लेकर देश और समाज की सेवा करने के भाव उत्पन्न हुए और फिर कलकत्ते में हमारे देश के स्वामीओं का एक मठ है जिसमें कई बड़े विद्वान, वकील, डाक्टर आदि सन्यासी बनकर रहते हैं और वे देश के अनेक भागों में जाकर लोगों को देश की और धर्म की सेवा करने का उपदेश आदि देते रहते हैं । हमारे वहां एक ऐसी ही बड़ी विदूषी माताजी सन्यासी के रूप में रहती हैं । मैं वहां रहकर वैसा सेवा कार्य करती रहीं । फिर मेरी इच्छा कुछ देशदर्शन करने की और तीर्थ यात्रा करने की हुई इसलिए मैं यह परिभ्रमण करने के लिए निकल पड़ी हूँ । मैंने हरद्वार के पास एक आश्रम में १-२ वर्ष बिताये और वहां पर एक स्वामीजी के पास से योग और प्राणायाम की बहुतसी क्रियाएं सीखीं । हमारे बंगाल देश में कुछ देश प्रेमी बहुत से नवयुवक है जो अंग्रेजो सरकार के विरुद्ध बड़े आंदोलन करते रहते हैं । उन में से कईयो को पकड़ पकड़ कर अंग्रेज सरकार ने जेलों में डाल रखे है । इधर महाराष्ट्र के देश भक्त तिलक महाराज भी हमारे देश के युवकों के प्रति बड़ी सहानुभूति रखते हैं और अपने पत्रों में लेखादि प्रकट करते रहते हैं । पूना इस प्रकार का बहुत बड़ जाग्रति का केन्द्र है । इसलिए मैं यहां से पूना जाना चाहती हूँ इत्यादि बहुत सी बातें उस महिला ने जी खोलकर हम लोगों के सामने कहीं —मैं तथा वे साध्वियां भी इस अपरिचित महिला की बातें बहुत मुग्ध भाव से सुनते रहे । मेरे लिये यह सब बड़ी विचित्र बातें थीं इनका कुछ रहस्य उस समय मेरी समझ में नहीं आया, मैंने इससे पहले सन्यासिनी दिखने वाली महिला के मुख से ऐसी बातें सुनने की कभी कोई कल्पना नहीं की थी । इससे पूर्व कुछ ही दिन पहले उक्त महाराष्ट्रीय शिक्षकजी के द्वारा जो देश भक्ति आदि के बारे में कुछ सुना था उसी से मिलती जुलती कुछ बातें इस महिला के मुख से भी सुनकर मुझे एक प्रकार का विस्मय सा होने लगा ।

फिर उस महिला ने कहा कि मैं यहां दो चार दिन रहना चाहती हूं और आप लोगों की ऐसी लंबी तपस्या आदि का अनुभव करना चाहती हूँ, तो मेरा यहां कहीं ठहरने का प्रबंध हो सकता है ? मैं दिन में एक ही बार भोजन करती हूँ और कोरी जमीन पर अपने पास जो आसन है उसको बिछा कर उस पर सो जाती हूं । सुबह शाम कहीं एकान्त में बैठकर मैं अपना भजन पाठ आदि करती रहती हूँ । यह सुनकर मैं तो विचार में पड़ गया, मैं उसका क्या जवाब दूं । यह सोचने लगा परंतु उस विचक्षण लघु साध्वी ने कहा कि ये माताजी, मेरी माता के पास रह सकती हैं । जैसा कि उपर मैंने सूचित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया कि वह साध्वी उसी गांव की रहने वाली थी और उसकी माता जो विधवा थी लेकिन अच्छी सम्पन्न थी और उदार मन वाली तथा दान-पुण्य करने की भावना वाली। उसका मकान अच्छा बड़ा था और उस समय हम लोगों के दर्शनार्थ आने वाले कई जनों का निवास उसके मकान में होता रहता था तथा खान-पान आदि की भक्ति भी वह श्राविका अच्छी तरह किया करती थी। उसका वह घर भी, हम लोगों के निवास स्थान के सामने वाले चौड़े बाजार में समीप ही था, इतने में वह श्राविका भी साध्वियों के गोचरी का समय जानकर वहां आगई, उसको उस लघु साध्वी ने उस महिला सन्यासिनी के बारे में ठहरने करने की व्यवस्था का सूचन किया, वह प्रौढ़ श्राविका प्रसन्नता पूर्वक उस सन्यासिनी को अपने घर लेगई और वहाँ पर उसके ठहरने की एक एकांत स्थान में व्यवस्था कर दी। दूसरे दिन जब तपस्वीजी का व्याख्यान हुआ तो उसमें वह सन्यासिनी स्त्रियों के साथ एकांत में आकर बैठ गई और एकाग्र मन से तपस्वीजी का व्याख्यान सुनती रहीं। व्याख्यान के बाद वह उस मकान पर चली गई और कुछ भोजन लेकर फिर १२-१ बजे आकर मेरे पास उसी चौंतरे पर आकर बैठ गई वे दोनों साध्विया तथा एक दो वैसी अन्य बहनें भी वहां आकर बैठ गई। हमारा नित्य का जो थाड़ा सा स्वाध्याय का क्रम था उसको चालू किया पर उस महिला के सन्मुख बोलने में मुझे कुछ हिचकिचाहट होने लगी। क्योंकि उस महिला की पहले दिन वाली सारी बातें सुनकर मेरे मनमें एक विचित्र प्रकार की खलबलाहट होने लगी थी। सारी रात पड़ा पड़ा मैं उस महिला की रहस्यमयी बातों का अस्त-व्यस्त चिंतन करता रहा। उसके जीवन के विषय के कुछ विशेष जानकारी प्राप्त करने का भी मेरे मन में कौतूहल उत्पन्न हुआ। उस महिला की उम्र उस समय प्रायः ३५ वर्ष के आसपास की होगी। मेरी उम्र तो उस समय २० वर्ष से भी कम थी उसके अनुभव, ज्ञान और साधना मय जीवन की दृष्टि से मेरे में तो कुछ भी नहीं है ऐसी लघुता मेरे मन में उत्पन्न हुई। मैं थाड़ी बहुत धर्म सम्बन्धी बातेंचीतें कर सकता हूँ और कुछ थोड़े से जैन शास्त्रों का मुझे ज्ञान है इससे मेरे पास आने वाले श्रावक भाई-बहनों की दृष्टि में मैं एक अच्छा पूज्यनीय और वन्दनीय साधु समझा जा रहा हूँ और इससे लोग आकर झुक कर मुझे वन्दन नमस्कार किया करते हैं। इसलिए शायद उस सन्यासिनी महिला के मन में भी मेरे लिए कुछ विशिष्टता के भाव उत्पन्न हुए हों। उस सन्यासिनी ने मुझ से प्रथम तो जैन साधुओं के विषय में जानकारी करनी चाही और इसलिए वह इस विषय के अनेक प्रश्न मुझ से पूछने लगी मैंने उसको धीरे-धीरे साधु धर्म के आचार क्या हैं वे संक्षेप में बतलाए। फिर उसने ये आपके गुरू कौन हैं, कहाँ के रहने वाले हैं, इतने लम्बे उपवास क्यों करते हैं. ये साध्वियां कौन है, किस तरह इन्होंने यह साधु वेष धारण किया, इनके जीवन का क्या उद्देश्य है? इत्यादि अनेक प्रश्न जो एक अच्छे विचारक के मन में उत्पन्न होते हैं, वैसे प्रश्न उसने पूछे। मैंने अपनी जितनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानकारी थी उसको संक्षेप में कह सुनाई। यह सब बातें वह बहुत गम्भीर भाव से सुनती रहती थी और उसके मुखाकृति के भावों स मुझे ज्ञात होता था कि वह कोई गम्भीर चिंतन में पड़ जाती थी। ऐसा वार्तालाप उसके साथ दो-तीन दिन तक होता रहा। फिर वह अधिक समय उस बड़ी साध्वी तथा जिस बहन ने लम्बे उपवासों की तपस्वा ले रखी थी, उसके पास जाकर बैठा करती और उनसे विविध प्रकार के धार्मिक भाव जानने की चेष्टा करता रही। पर उन तपस्या करने वालों की वैसी कोई मनो भूमिका नहीं थी जो उस महिला की बातों को ठीक समझे सकें और ठीक उतर दे सके।

मेरे पास भी उसको कुछ विशेष ज्ञान मिलने जैसी कोई अध्ययनात्मक सामग्री नहीं थी। तथापि मेरी जिज्ञासा वृति को वह ठीक समझ सकी थी और इस दृष्टि से मेरे साथ बैठकर कुछ जीवनोंपयोगी बातें करती रही। उसने मेरे जीवन के विषय में भी कुछ प्रश्न पूछे। मैंने संक्षेप में परन्तु जीवन में पहली ही बार ऐसी व्यक्ति के सन्मुख अपने भाव प्रकट किये। इसमें खासकर अपनी माता के वियोग आदि का मैंने वर्णन सुनाया। इसे सुन कर उसका हृदय आर्द्र-भाव से भर उठा और उसने खुले मन से कहा कि जब आपकी माता के प्रति ऐसी संवेदना है तो उसे आप कभी अपने पास क्यों नहीं बुलाना चाहते आदि। तब मैंने कहा कि हमारा साधु धर्म वैसा करने की आज्ञा नहीं देता तब उसने कहा कि इस प्रकार का यह साधु जीवन मुझे कुछ विचार शून्य सा लगता है। आपके जीवन का लक्ष्य कोई विशिष्ट होना चाहिये आप में कुछ ऐसी आंतरिक शक्ति दिखायी देती है जो योग्य समागम के मिलने पर खूब विकसित हो सकती है। मैंने उसकी ये बातें बहुत ध्यान पूर्वक सुनी और मेरे मन में एक प्रकार का कुछ विचित्र आन्दोलन होने लगा। उसकी कुछ बातें तो मुझे चुभ सी गई। ये सब बातें बैठी-बैठी वह लघु साध्वी भी सुनती रही पर इसका मर्म उसके समझ में कुछ भी नहीं आया। परन्तु उसके मन में मेरे बाल्य जीवन सम्बन्धी बातें जानने की विशेष जिज्ञासा हो आई। दो-तीन दिन बाद वह महिला सन्यासिनी वहाँ से पूना चली गई। मुझे अपना पता दे गई और कहा कि मैं कभी आपको पत्र लिखूं तो मुझे उत्तर मिलेगा? तब मैंने कहा कि हम अपने साधु धर्म के मुताबिक किसी को अपने हाथों से पत्र नहीं लिखते न हम किसी के आने जाने का भी कोई संदेशा भिजवाते है। वह सन्यासिनी जब जाने लगी तो उस श्राविका ने उसको खर्ची की दृष्टि से ५-७ रुपये दिये।

इस प्रकार वारी के उस चातुर्मास में उक्त शिक्षक तथा महिला सन्यासिनी के समागम से मेरे मन में जिन विचारों का अज्ञात रूप से बीजारोपण हुआ वह बाद में जा कर कैसे अंकुरित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ उसका चित्र आगे के प्रकरण में मिलेगा। तपस्वीजी की लम्बी तपस्या के पारणा के समय आस पास के सैंकड़ों भाई-बहन वारी गांव में आये साध्वीजी की तपस्या का पारणा भी उसी समय हुआ तथा उस बहन के मासोपवास का पारणा भी उसी समय सम्पन्न हुआ। इसलिए वह प्रसंग उस गांव के लोगों के लिए अद्भूत सा बना। उस तपस्वी बहन के रिस्तेदारों ने उसका फोटू लेने के लिए एक केमरामेन को बाहर से बुलाया। उसने उस बहन के रिस्तेदार आदि का एक ग्रुप फोटू भी लिया। तब उन भाईयों की यह भी इच्छा हुई कि वे हम तीनों साधुओं का भी एक फोटू ले लिया जाय इसके लिए तपस्वीजी से निवेदन किया तो प्रथम तो वे साफ इन्कार हो गये। उन्होंने कहा कि साधु का फोटू लेना साधु धर्म के विरुद्ध है, क्योंकि इस फोटू के धोने आदि क्रिया में सचित पानी का उपयोग होता है इसलिए यह साधु के लिए अनाचार का विषय है। तथापि मेरी इच्छा फोटू लिवाने की बहुत रही इससे आग्रह करके मैंने तपस्वीजी को मनाया और हम तीनों साधुओं का एक फोटू उस समय लिया गया। स्थानकवासी साधु जीवन में मेरा यह एक ही फोटू लिया गया था और उसकी फोटू कॉपी जब तक मैं उस वेष में रहा तब तक अपना पोथी के पुठे में सम्भालकर रखी।

कुछ दिन बाद उस लघु साध्वी ने कई दफह आग्रह किया कि मैं अपनी माता को बुलाना चाहूँ तो उसके लिए वह अपनी माता द्वारा कुछ विशेष प्रबन्ध कराना चाहती है। उसकी बहुत इच्छा रही कि वह किसी तरह अपनी आँखों से मेरी माता को देख सके, मेरी माता के प्रति उसके दिल में अपनी माता से भी अधिक भाव उत्पन्न हो गया था वह बारम्बार मुझ से पूछा करती कि आप क्यों नहीं अपनी माता को देखना चाहते हैं पर इसका कोई समुचित उत्तर मेरे पास से न सुनकर वह मन में बहुत खिन्न हुआ करती थी। मुझे लगने लगा कि मैंने अपनी माता के बारे में इन लोगों से बातें कहकर अपने हृदय को मर्माहत बना दिया और इसकी कोई दवा मुझे मिल नहीं रही है।

वारी गांव का वह चतुर्मास मेरे मन को कई प्रकार से आन्दोलित करने वाला रहा।

चातुर्मास समाप्त होते ही हम तीनों साधुओं ने वहाँ से विहार कर दिया और फिर मालवे की तरफ जाने की तपस्वीजी की इच्छा हुई। हम पुनः एक बार चम्पालालजी से मिलने के लिए अहमदनगर की तरफ गए। उनसे मिले और तपस्वीजी ने कहा कि बहुत वर्षों से आप इधर ही विचरे रहे हैं। सो अब मालवे की तरफ हमारे साथ पधारें। सुनकर चम्पालालजी का कुछ मन हो गया और फिर हम सब वहाँ से विहार करते हुए वाम्बोरी आदि गांवों में ठहरते हुए कोई २-३ महिने बाद मनमाड पहूँचे। मनमाड से हमारी इच्छा धुलिया जाने की हुई पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चम्पालालजी वहीं ठहर गये। रास्ते में मुन्नालालजी भी दोनों बाप बेटे हमारे साथ हो लिए। हम धुलिया पहुँचे वहाँ पर दो साधु जो सगे भाई थे उनसे हमारा मिलना हुआ। उनका नाम तो अब मुझे याद नहीं आ रहा है परन्तु उनकी वहाँ पर अच्छी प्रतिष्ठा नहीं थी वहां के श्रावकों ने उनके शिथी-लाचार के विषय में बहुतसी बातें हमें सुनाई–कहने लगे कि ये महाराज रोज सुबह हलवाई की दूकान से गरम गरम जलेबियां किसी भाई के द्वारा मंगवाते रहते हैं ऐसी और भी अनेक बातें उन भाईयों ने हमसे कही। तो मैं कौतूहल के वश उनसे हिल मिल सा गया था और उन्होंने मुझे कुछ दिल खालकर अपनी बातें कही। उनके पास काँच के विशिष्ट मणियों को एक दो मालाएं मैंने देखी। साधु लोग तो ऐसी काँच की मणियों की मालाए नहीं रखते हैं। मुझे उनको देख-कर कुछ आश्चर्य सा हुआ। कुछ समय बाद हमने सुना कि उन्होंने उस साधु वेष का परित्याग कर दिया और मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। हम लोग धुलीया से वापस मनमाड आए वहां पर चम्पालालजी के साथ कुछ दिन रहे। तपस्वीजी की इच्छा अब जल्दीर में जाने की हो रही थी उन्होंने चम्पालालजी से चलने को फिर कहा परन्तु उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की तब हम लोग उन्हें वहीं छोड़ कर आगे चले रास्ते में बाघली गांव आया यहाँ के श्रावकों का अत्याग्रह होने के कारण महिना भर वहाँ ठहरना हुआ। बाघली में भुसावल के कुछ भाई आये और उन्होंने आने वाला चातुर्मास भुसावल में करने का अत्याग्रह किया यद्यपि तपस्वीजी की इच्छा चातुर्मास के पहले मालवे में पहुँच जाने की थी परन्तु भुसावल वालों का अत्याग्रह देखकर वहाँ चातुर्मास करने की सम्मति प्रदर्शित की फिर वहाँ से विहार करते हुए उतराण, पांचोरा, जल-गांव आदि स्थानों में ठहरते हुए, चौमासे के नजदीक के दिनों में भुसावल पहुँच गए हमेशा के क्रमानुसार तपस्वीजी ने वहाँ पर ५० दिन की तपस्या की सदा की भाँति वहाँ भी सैंकड़ों भाई बहिन दर्शनार्थ आए।

एक दिन एक युवक भाई अपने हाथ में कुछ एक दो पुस्तकें लेकर मेरे पास आकर बैठा। वह अच्छा शिक्षित सा मालूम दिया। कुछ दो-चार बातें करने पर मैंने यों ही पूछा कि यह पुस्तक तुम्हारे हाथ में काहे की है? तब उसने कहा कि इस पुस्तक का नाम सत्यार्थ प्रकाश है यह आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्दजी की बनायी हुई है। मैं अमुक नगर में एक कॉलेज में एम० ए० की पढ़ाई कर रहा हूँ वहां कॉलेज के छात्रालय में रहता हूँ। वहाँ कुछ आर्य समाज को मानने वाले एक-दो वैसे ही मेरे मित्र रहते हैं जो हमेशा कुछ समाज विषयक बातों की चर्चा करते रहते हैं। मैं जैन होने के नाते मेरे साथ वे जैन धर्म और समाज के बारे में भी कुछ विचार विनियम करते रहते हैं और स्वामी दयानन्दजी के बताए हुए वैदिक सिद्धान्तों पर खूब आस्था रखते हैं। उन्होंने कुछ मजाक करते हुए जैन धर्म के बारे में कहा कि जैनियों के ग्रन्थों में ऐसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेबुनियादी बातें लिखी गई है । जो मनुष्य की सामान्य बुद्धि की समझ के बाहर है । उदाहरण के तौर पर जैन धर्म में ऐसा कहा गया है कि पुराने जमाने में मनुष्य लाखों करोड़ों वर्ष की आयु वाले होते थे तथा उनके शरीर की लम्बाई ऊंचाई-इतनी होती थी कि जो हजारों फूटों से नापने लायक होती थी । इसी तरह की जैन धर्म की कई विचित्र बातें स्वामी दयानन्दजी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक में लिखी हैं और मुझे उन्होंने उस पुस्तक के पढ़ने का आग्रह किया । वही पुस्तक यह मेरे हाथों में है। मैं इसको कुछ बातों का खुलासा आपसे जानना चाहता हूँ। इत्यादि कुछ बातें उस भाई ने कहीं जो मेरे लिए सर्वथा अज्ञात थी। अपनी अज्ञानता को छिपाने की दृष्टि से, मैंने उस भाई से कहा कि तुम इस पुस्तक को मेरे पास रख जाओ मैं इसका ध्यान से अवलोकन करना चाहता हूँ और उसका खुलासा सोचना चाहता हूँ। यह सुनकर उस भाई ने वह पुस्तक मेरे पास रख दी और नमस्कार आदि करके चला गया। फिर मैंने धीरे-धीरे उस पुस्तक को पढ़ना प्रारम्भ किया । उसके प्रारम्भ के कुछ प्रकरणों की बातें तो मेरी समझ के बाहर थी, पर उसमें जैन धर्म के विचारों पर आक्षेप करने वाली जो बातें लिखी थी उनको मैंने बहुत ध्यान पूर्वक कई बार पढ़ी । उनके पढ़ने से मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामीदयानन्दजी ने, जैन शास्त्रो में वर्णित काल चक्र के स्वरूप से सम्बन्ध रखने वाली ये बातें लिखी हैं । जैन ग्रन्थों में वर्णन है कि वर्तमान अवसर्पिणी काल के बीते हुए तीसरे-चौथे आरे में जो पशु-मनुष्य आदि प्राणी उत्पन्न होते थे उनकी आयु लाखों करोड़ों वर्षों जितनी लंबी होती थी तथा शरीर भी उसी प्रमाण में सैंकड़ों हजारों धनुष्य प्रमाण बड़े होते थे। इसी तरह जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसका स्वरूप भी ऐसा वर्णित है जो आज के युग की वास्तविकता से सर्वथा विचित्र और कपोल कल्पना प्रसूत मालूम देता है ।

प्राचीन इतिहास के जानने की तरह मेरी जिज्ञासा भूगोल विषयक बातों के जानने की भी वैसी ही रही। जम्बुद्वीप के वर्णन स्वरूप जो थोकड़े मैंने पढ़े थे। उनमें मेरी खास रूचि रहती थी । जम्बुद्वीप और धातकी खण्ड आदि ढ़ाई द्वीप का स्वरूप बताने वाले जो नक्शे मुझे मिले मैं उनको सम्भालकर अपने पढ़ने के पुठ्ठे में रखा करता था और बारम्बार उन्हें देखा करता था।

उन नक्शों में भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र तथा महाविदेह क्षेत्र के रेखा चित्र दिये गये थे । तथा मेरू पर्वत, हिमवान पर्वत, वैताढ्य पर्वत आदि बड़े पर्वतों की स्थिती भी उनमें आलेखित की हुई थी। तथा ये क्षेत्र और पर्वत कितने लम्बे-चौड़े और ऊँचे हैं इनका माप भी योजनों की गिनती में लिखा हुआ था । किस तरह हमारे इस भरत क्षेत्र में दिन और रात होते रहते हैं उनको परिगणना भी बताई गई थी । खण्डा जोयण नाम का एक बड़ा सा थोकड़ा मैने ठीकर अभ्यस्त कर लिया था और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके सहारे जम्बु द्वीप आदि ढ़ाई द्वीप के नक्शों का मैं अवलोकन किया करता था। जिन दिनों उस भाई ने उक्त सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक मुझे लाकर दी उन्हीं दिनों मैं उक्त प्रकार से उन नक्शों आदि का अवलोकन कर रहा था। मेरी श्रृद्धा उस विषय में दृढ़ मूल थी। मैं मानता था कि जैन शास्त्रों में वर्णित ये सब बातें सर्वथा सत्य हैं उनमें शंका उत्पन्न होने जैसी कोई बात नहीं है परन्तु दुनियाँ के और लोग इन बातों को किस तरह मानते हैं और समझते हैं—इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं था न मैंने अब तक ऐसी कोई पुस्तकें ही देखी थी और न इस भविष्य की चर्चा करने वाले कोई भाई से ही मेरा वैसा परिचय हुआ था।

स्वामी दयानन्दजी का मुझे कोई विशेष परिचय ज्ञात नहीं हुआ था। मैं इतना जान सका था कि वे आर्य समाज नामक एक धर्म सम्प्रदाय के संस्थापक थे। और वे कई राजपूत राजाओं के बहुत पूज्यनीय थे। मेरे स्वर्गीय पिता ने भी उनसे यज्ञो पवित धारण किया था जिसका वर्णन मैंने अपनी प्रकाशित जीवन कथा में कुछ दिया है। इसलिए मेरे मन में स्वामीजी में प्रति अन्तर में कोई सद्-भाव छिपा हुआ था। परन्तु जब मैंने इस तरह सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा और उसमें लिखे गये जैन धर्म विषयक आक्षेपात्मक विचार पढ़ने में आये तो मेरे मन में कुछ और ही प्रकार के भाव उत्पन्न होने लगे। मेरे मन में लगा कि जिनको जैन शास्त्रों में मिथ्या दृष्टि कहा है वे ऐसे ही लोग होते हैं। जैन धर्म प्रतिपादित सिद्धान्तों को विपरित दृष्टि से देखने का नाम मिथ्या दृष्टि है। मेरी मान्यता थी कि जैन शास्त्रों में जो कुछ लिखा गया है वह सर्वथा सत्य है और वह सब सर्वज्ञ भगवान का कहा हुआ है इसलिए उसमें शंका उत्पन्न होना भी मिथ्या दृष्टि के उदय का प्रभाव है इत्यादि।

दो-तीन दिन बाद जब वह युवक पुनः मेरे पास आया और उक्त विषय में कुछ चर्चा करनी चाही तब मैंने उससे उपर्युक्त बातें कही परन्तु वह तो एम० ए० जैसी शिक्षा प्राप्त युवक था उसने विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित आदि अनेक विषयों की अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी। मुझे उन विषयों का किंचित भी ज्ञान नहीं था। वह युवक अध्ययनशील था, धर्म और समाज विषयक अनेक पुस्तकें उसने पढ़ी थी। मेरी उक्त बातें सुनकर वह कुछ हँसने सा लगा उसने कहा कि महाराज आप धर्म गुरूओं को देश और धर्म की वास्तविकता का बहुत कम परिचय होता है। हम लोग जो नई शिक्षा प्राप्त करते हैं और उसके द्वारा जिन विषयों और विचारों का हमें परिज्ञान प्राप्त होता है उसके कारण अब जो शिक्षित समाज उत्पन्न हो रहा है उसको हमारे शास्त्रों में लिखी गई ऐसी बेबुनियादी बातों पर किंचीत भी श्रृद्धा नहीं होती आज की स्कूलों में चौथी-पाँचवीं-छठ्ठी किताबें पढ़ने वाला लड़का भी यह निश्चित रूप से जान सकता है कि हमारी यह पृथ्वी कितनी लम्बी, चौड़ी, और किस आकार प्रकार की है। हमारे यहाँ जो दिन और रात होते हैं। उनका क्या कारण है। ये चन्द्र और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य जो हमें दिखाई दे रहे वे क्या है, तथा आकाश में जो ये असंख्य तारे दिखाई देते हैं वे क्या है ? उनकी गति, स्थिति आदि क्या है ? इत्यादि भूगोल सम्बन्धी जो बड़ी-बड़ी बातें हैं, वह प्रत्येक स्कूली विद्यार्थी जान सकता है । उनके सामने आप लोग जो जम्बुद्वीप, ढ़ाईद्वीप आदि की बातें करते हैं वे केवल कपोल कल्पना जैसी ही लगती है। स्वामी दयानन्दजी ने इन्हीं बातों को लक्ष्य कर इस सत्यार्थ प्रकाश में जैन धर्म विषयक कुछ विचार लिखें हैं। आप लोगों को चाहिये कि इनका गहरा अध्ययन करें और इनका कोई समुचित उत्तर देना जैसा लगे वह दें। मेरे पिता जैन धर्म के कुछ अच्छे जानकार हैं और उनके साथ मैं ऐसी चर्चा कभी कभी किया करता हूँ। मैंने अपने पिताजी से सुना कि आप जैन शास्त्रों का ठीक-ठीक अध्ययन कर रहे है और साथ में मराठी भाषा के साहित्य का भी कुछ परिचय प्राप्त कर रहे हैं । इसलिए आपके पास ये बातें मैंने कही हैं । और साधु लोग तो ऐसी बातें सुनाना भी नहीं चाहते । यह सुनकर मैंने उससे कहा कि भाई तुम्हारी यह बाते मुझे बहुत अच्छी लगी है और मेरी जिज्ञासा भी ऐसे विषयों का विशेष ज्ञान प्राप्त करने की रहा करती हैं परंतु हम साधुओं का जो आचार विचार है उसके कारणा मैं अपनी जिज्ञासा को तृप्त नहीं कर सकता । इत्यादि बातें उस युवक से दो-चार दिन खुल्ले मन से होती रही और जिस प्रकार वारी में उस शिक्षित अज्ञात मास्टर के समागम से मुझे कुछ अपने अध्ययन का कोई नया आभास दिखाई दिया इसी तरह इस जैन शिक्षित युवक के साथ वार्तालाप करने से जैन शास्त्रों का अध्ययन किस दृष्टि से करना चाहिये इसका भी मुझे कुछ नूतन प्रतिभास होने लगा । अब आने वाले वर्ष में इन कुछ सुने-सुनाये अस्त व्यस्त विचारों ने कैसा रुप धारण किया, इसका कुछ परिचय आगे दिया जा रहा हैं ।

भुसावल से मालवे की तरफ प्रयाण

भुसावल का चातुर्मास समाप्त होने पर हमने इन्दौर की तरफ जाने का विचार किया, रास्ते में बर्हानपुर, खण्डवा आदि स्थानों में होते हुए कोई महिने बाद हम अपने उसी परिचित इन्दौर शहर में पहूँचे। वहां पर सुना कि अगले दो एक महिनों में रतलाम शहर में स्थानक वासी जैन सम्प्रदाय की एक बहुत बड़ी कान्फ्रेंस (सभा) हो रही है उसमें अनेक साधु-साध्वियों का समुदाय उपस्थित होने वाला है । हम लोगों की इच्छा वहां जाने की हुई अतः हम वहां से विहार करते हुए बदनावर - बड़नगर आदि कई स्थानों में घूमते हुए रतलाम पहूंचे ।

जैसा कि ऊपर सूचित किया है रतलाम में हमारे धर्मदासजी के सम्प्रदाय का जो धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानक था उसमें जाकर हम ठहरें । इसी सम्प्रदाय के नन्दलालजी आदि साधु भी वहां पर थे । शहर में हुक्मीचन्दजी के सम्प्रदाय के पुज्य श्रीलालजी तथा जवाहरलालजी और चोथमलजी आदि साधुओ का भी अच्छा समुदाय था । कुछ और भी मारवाड़ी सम्प्रदाय के साधु वहां पर आये ए थे ।

नीयत समय पर कोन्फ्रेंस का समारोह होना शुरु हुआ । हजारों जैन भाई-बहन वहां इकठे हुए थे । खासकर के काठियावाड़ के कुछ प्रसिद्ध जैन भाई उसमें अधिक उत्साह दिखा रहे थे । काठियावाड़ निवासी भाइयों की प्रेरणा से मोरबी और शायद राजकोट के राजा भी उस कोन्फ्रेन्स में उपस्थित होने वाले थे, इसलिए रतलाम के महाराजा ने भी उस समारोह के लिए अच्छा सहयोग दिया । उद्घाटन के समय हम साधु जनो को भी वहां उपस्थित होने का आग्रह पूर्वक आमंत्रण दिया गया और आगत श्रावक समुह को कुछ मांगलिक रुप धर्मोपदेश देने की व्यवस्था की गई थी । शायद जैन स्थानक वासी सम्प्रदाय की यह सबसे पहली कोन्फ्रेन्स थी और इसके लिए काफी प्रचार किया गया था । शहर के बाहर बहुत बड़ा पाण्डाल बनाया गया था और आने वाले अथितियों के लिए वहां ठहरने की भी बड़ी विशाल व्यवस्था की गई थी कोई तीन दिन का वह सम्मेलन था । हम साधु लोग भी सम्मेलन प्रारम्भ होने के २ घण्टे पहले वहां पांडाल में जाकर एक तरफ बैठा करते थे । साधुओ के बैठने के लिए बिल्कुल अलग व्यवस्था की गई थीं । विशिष्ट अथितियो के लिए तथा कोन्फ्रेन्स के अग्रगण्य कार्य कर्त्ताओं के लिए अलग बड़ा सा सुशोभित मंच बनाया गया था ।

हम लोग पहले हो जा कर अपने "पोठ" पर बैठ जाते थे श्रावक लोग खड़े होकर स्वागत करते थे । साधुओं के अलग - अलग समुदाय के लिए अलग - अलग पट्टे रख दिये गये थे । उनपर हम यथा स्थान आसन लगाकर बैठ जाते थे प्रारंभ के समय जब मोरवी के राजा आदि विशिष्ट अतिथि आये तो उनका श्रावकों ने भव्य स्वागत किया । उन्होने हम साधुओं की तरफ भी हाथ जोड़कर नमस्कार किया ।

उस जमाने में जैन समाज की दृष्टि से यह एक अद्भुत सा दृश्य था । सभा का प्रारंभ होने पर पहले पुज्य श्रीलालजी ने मंगला चरण सुनाया । कुछ थोड़ा सा धर्मोपदेश जवाहरलालजो ने भी सुनाया । फिर उन्हीं के शिष्य चौथमल जी नामक साधु ने खड़े होकर कोई आधा घन्टे तक व्याख्यान दिया चौथमलजी एक अच्छे व्याख्यानिक कहे जाते थे । उनकी आवाज बहुत बुलंद थी और वे अक्सर उर्दु भाषा की गजले गा२ कर उन पर प्रवचन करते रहते थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपस्थित लोगों ने उनका व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुना। फिर कोन्फ्रेन्स की कार्यवाही शुरू हुई और नियमानुसार भाषण आदि होते रहे आगत अतिथि विशेष मोरबी नरेश का भी बहुत सम्मान किया गया। जिसके प्रत्युतर में उन्होने भी कुछ आभार प्रदर्शित बातें कही। उस समय लाउडस्पीकर नहीं थे जिससे सभा में कोलाहल के कारण लोगों को कुछ कम ही सुनाई देता था। हम साधु लोग समय होने पर वहां से उठकर अपने-अपने धर्म स्थानों में पहुँच गये। कोन्फ्रेन्स की कार्यवाही दोपहर के बाद शुरू होती थी और सुबह के समय घण्टा-डेढ़ घण्टा साधुओं के व्याख्यान उनके धर्म स्थानकों में होते थे। दूसरे दिन दोपहर को पहले दिन की तरह ही साधु लोग सभा के पाण्डाल में पहुँच गये थे। इस दिन शिष्टाचार के खयाल से श्रावकों ने हमारे सम्प्रदाय के साधुओं को धर्मोपदेश के लिए विनती की तदनुसार नन्दलालजी स्वामी जो हमारे सम्प्रदाय में मुखिया थे तथा व्याख्यान की दृष्टि से वे जरा अधिक निपुण समझे जाते थे। इसलिए उनका आध-पोण घण्टे तक व्याख्यान होता रहा पर उपस्थित समुदाय ने चौथमलजी को पुनः व्याख्यान देने का अनुरोध किया क्योंकि पहले दिन उन्होंने अपनी बुलन्द आवाज से गजलें आदि गाकर श्रोताओं का मन आकर्षित कर लिया था।

चौथमलजी के बाद कुछ भाईयों ने जो हमारे धर्मस्थानक के अनुरागी थे उन्होंने हमारे सम्प्रदाय की एक साध्वी जो चौथमलजी की तरह ही गजलें आदि गाने में तथा पर कुछ प्रवचन करने में निपुण सी हो गई थी उसका भी धर्मोपदेश—देने के लिए आग्रह किया गया। नन्दलालजी स्वामी की आज्ञा पाकर बहुत संकोच के साथ उस साध्वी ने थोड़ा सा प्रस्तावना रूप प्रवचन कर उसके समर्थन में एक दो गजलें गाकर सुनाई उस साध्वी का कंठ इतना मधुर तथा सुरीला था और उसके गाने की कला भी इतनी आकर्षक थी जिससे सुनकर चौथमलजी के व्याख्यान से भी अधिक सारी सभा लीन जैसी हो गई थी। फिर जब सभा की कार्यवाही शुरू हुई तो हम सब साधु लोग अपने धर्म स्थानों में वापस चले आये।

तीसरे दिन सुबह हमारे धर्म स्थानक में जब व्याख्यान शुरू हुआ तो लोगों की अत्यधिक ठठ्ठ जमी और उन श्रोताओं ने उक्त साध्वी जी से और अधिक गजलें आदि गाने की विनती की और उसने कई अनेक उपदेशात्मक गजलें गाकर श्रोताओं के मन को खूब रंजीत किया। उस दिन फिर हम साधु लोग उक्त सभा का कार्यवाही में सम्मिलित होने के लिए नहीं गए। दो-तीन दिन में कोन्फ्रेन्स का वह मेला समाप्त हो गया और हम साधु लोगों ने भी अन्यत्र विहार करने का विचार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रतलाम में जितने दिन हम रहे नन्दलालजी स्वामीजी के मेरी ही समान उम्र वाले तथा मेरी ही नाम राशी वाले छोटे साधु किसनलालजी के साथ मेरा अधिक सख्य भाव हो गया। हम दोनों एक साथ बैठते और अपने अध्ययन आदि की बातें विचारा करते। मैं तीन वर्ष दक्षिण में परिभ्रमण कर आया था इससे वहाँ के कुछ अपने अनुभव मैंने सुनाए। मैंने उनसे कहा कि हम लोगों को अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए कोई विशेष स्थान में रहना चाहिये और किसी प्रकार अपने सूत्रों का गहरा अध्ययन करने का प्रयत्न करना चाहिये इत्यादि, कई बातें उनसे हुआ करता। दक्षिण में रहते हुए मैंने मराठी भाषा का जो परिचय प्राप्त किया तथा उसकी कुछ इतिहास आदि की पुस्तकें पढ़ी उसका भी कुछ जिक्र उनसे किया पर मुझे मालूम हुआ कि उनकी इन बातों में कोई जिज्ञासा नहीं थी। उनका लक्ष्य तो था कि किस तरह ढाल, चौपाई, गजलें आदि गा कर सुनने वाले लोगों का मन आकर्षित किया जाय उनका कंठ भी कुछ अच्छा था और वे चोथमलजी की तरह व्याख्यान कला में निपुणता प्राप्त करने की इच्छा रखा करते थे। आने वाला चातुर्मास तपस्वीजी ने उज्जैन में करने का विचार किया। इधर नन्दलालजी भी बहुत वर्षों से उज्जैन की तरफ नहीं विचरे थे इसलिए उज्जैन होकर मालवे में आगर आदि गांवों की तरफ विचरने का हुआ। कुछ दिनों तक हम दोनों ही समुदायों ने एक साथ विचरण किया।

नन्दलालजी के साथ ३-४ साधु थे उनमें एक तीनएक वर्ष की उम्र का नव दीक्षित साधु था जो पहले मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ था। उसने मारवाड़ में त्रिस्तुती सम्प्रदाय (जिसको लोग सामान्य रूप से तीन थुई वालों का सम्प्रदाय कहा करते हैं।) के एक विद्वान् साधु के पास से दीक्षा ली थी। इस त्रीस्तुतीय सम्प्रदाय के संस्थापक राजेन्द्र सूरि नाम के एक बहुत अच्छे विद्वान् साधु थे। वे संस्कृत और प्राकृत भाषा के बड़े विद्वान् थे। 'अभी धान-राजेन्द्र,' नाम का प्राकृत भाषा का बहुत बड़ा कोष ग्रन्थ उन्होंने कई वर्षों के परिश्रमपूर्वक बनाया। उनकी आम्नाय वाले मालवे में जावरा, रतलाम आदि नगरों में भी कई अनुरागी भाई थे। रतलाम में ही उक्त कोष के छपवाने का कार्यालय था। परन्तु रतलाम में रहते हुए हमें उसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। जिस साधु ने नन्दलालजी के पास त्रीस्तुतीय सम्प्रदाय का भेष छोड़-कर स्थानकवासी सम्प्रदाय का भेष धारण कर लिया था। वह किसी लड़ाई झगड़े के कारण हो उक्त सम्प्रदाय छोड़कर इस सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया था। पर उसका मन इस नूतन सम्प्र-दाय में लग नहीं रहा था। इस सम्प्रदाय के आचार-विचार उसे कठिन से लग रहे थे। उसके कुछ विचारों से मुझे लगा कि वह शायद थोड़े ही दिन में इस भेष को छोड़कर चले जाने की कोई बात मन में सोच रहा है। यों वह मेरे पास खुल्ले दिल से कुछ बातें करने लगा उसको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरी बातों से लगा कि मैं कुछ विशेष अध्ययन करने की इच्छा रखता हूँ। पर वह कैसे और कहाँ किया जाय इसका मुझे कोई खयाल नहीं था । वह ३-४ वर्ष मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में रहा और उस सम्प्रदाय की प्रथानुसार उसने जीव विचार, नवतत्व आदि प्राकृत प्रकरण कंठस्थ किये थे । उस सम्प्रदाय में प्रचलित श्रमण सूत्र अर्थात् साधु प्रतिक्रमण सूत्र का भी पूरा पाठ कंठस्थ किया था और फिर संस्कृत भाषा के अध्ययन की दृष्टि से सारस्वत व्याकरण का भी कितनाक भाग सिख लिया था ।

जिन साधुओं के पास उसने वह दीक्षा ली थी वे उस सम्प्रदाय में एक बहुत अच्छे विद्वान माने जाते थे, और वे उक्त राजेन्द्र सूरि के एक विशिष्ट शिष्यों में से थे, उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखी, छपवाई थी। उस सम्प्रदाय की कुछ जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से मैंने उसके साथ कुछ विशेष सख्य भाव धारण किया। उसका नाम उस समय रंगलाल था और जिस संप्रदाय का छोड़कर वह आया था उस सम्प्रदाय का उसका दीक्षित नाम रंगविजय था। मैं मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार व्यवहार के बारे में कुछ भी नहीं जानता था । उनका भेष कैसा होता है यह सर्व प्रथम चालीस गांव में उक्त साधु को देखा तब मुझे कुछ आभास हुआ इतना मैं जरूर जानता था कि मूर्तिपूजक साधु मन्दिरों में जाते हैं और तीर्थंकरों की मूर्तियों को नमस्कार आदि करते रहते हैं, यति संसर्ग के कारण मुझे जैन मन्दिर तथा तीर्थंकरों की मूर्ति और उनकी पूजा आदि करने का मुझे ठीक परिचय था। पर उस साधु धर्म के बारे में कोई विशेष ज्ञान नहीं था । रंगलाल से मैंने धीरे-धीरे यह सब बातें जानने का प्रयास किया ।

स्थानकवासी सम्प्रदाय में ठीक ठीक संस्कृत भाषा जानने वाला कोई साधु मैंने नहीं देखा सुना । रतलाम में प्रथम बार उस कोन्फ्रेन्स में जो छोटे-बड़े ४०-५० साधु इकठ्ठे हुए थे, उनमें कोई भी संस्कृत का विद्वान नहीं देखा । जैन आगमों के अर्थों का अच्छा ज्ञान रखने वाले तो कई साधु जानने में आए परंतु वे सब भाषा में लिखे गए सूत्रों के टबार्थ पढ़-पढ़ कर ही इनका ज्ञान रखते थे । और बोल-चाल की भाषा में कुछ पुराने साधुओं ने जो प्रकरणात्मक थोकड़े बना रखे थे उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करते रहते थे ।

मैंने जब यह सुना कि मूर्तिपूजक साधु संस्कृत के बड़े विद्वान होते हैं और सूत्रों पर पुराने आचार्यों की बनाई हुई संस्कृत टिकाएं पढ़ते रहते है तथा जीव विचार नवतत्व, क्षेत्र समास, संग्रणी सूत्र कर्म ग्रन्थ आदि अनेक प्रकरण ग्रंथ जो प्राकृत भाषा में बने हुए हैं उनका भी अच्छा अच्छा अध्ययन वे करते रहते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए मैंने रंगलाल से पूछा कि मूर्तिपूजक साधु ऐसी विद्या अध्ययन कहाँ और कैसे करते रहते हैं ? तब उसने कहा कि मूर्तिपूजक कई साधु स्वयं अच्छे विद्वान होते हैं इससे वे अपने शिष्यों को स्वय पढ़ाते रहते हैं तथा व्याकरण, काव्य, कोष न्याय आदि के संस्कृत भाषा के ग्रन्थों का अध्ययन कराने के लिए अच्छे ब्राह्मण पंडित भी उनके पास रहते हैं, जिनके खर्चे की व्यवस्था श्रावक लोग करते हैं । जहाँ पर वे साधु चातुर्मास करते हैं वहाँ पर ऐसे ब्राह्मण पंडितों को काशी आदि स्थानों से बुलाया जाता है और वे साधुओं को व्याकरण आदि विषयों के ग्रन्थ पढ़ाते रहते हैं ।

रंगलाल ने कहा कि मेरे गुरू के जो बड़े गुरू राजेन्द्र सूरि थे उनके पास ऐसे दो-चार ब्राह्मण पंडित हमेशा रहा करते थे। उन्होंने जो बहुत बड़ा जैन आगमों का कोष ग्रन्थ बनाया है उसके बनाने, लिखने, छपवाने आदि के काम में भी ये पंडित लोग मदद करते रहे हैं। मैंने भी ऐसे ही एक पंडित से संस्कृत व्याकरण सीखना शुरू किया था। उसने बताया कि हमारे सम्प्रदाय के तो ५-७ साधु ही ऐसे अच्छे विद्वान हैं परन्तु गुजरात में जो और सम्प्रदाय के ऐसे मूर्तिपूजक साधु हैं उनमें कई बहुत बड़े२ विद्वान हैं ।

हमारे सम्प्रदाय के श्रावकों ने दो वर्ष पहले मारवाड़ के एक गांव से समुज्जय की यात्रा के लिए सघ निकाला जिसमें सैंकड़ों भाई बहिन सम्मिलित हुए और हमारे सम्प्रदाय के १५-२० साधु और कुछ साध्वियाँ भी उसमें साथ थे । हम लोग आबु, तारंगा, पालनपुर, पाटन, संखेश्वर आदि स्थानों की यात्रा करते हुए अहमदाबाद, भावनगर, आदि शहरों में होकर पालीताना नगर में पहुँचे थे, वहाँ पर गुजरात से भी ऐसे दो-तीन संघ आये, उनमें वैसे ही कई साधु-साध्वीं थे । हमने यात्रा के समय पाटन, अहमदाबाद, भावनगर आदि शहरों में बहुत बड़े-बड़े उपाश्रय देखे और वहाँ पर रहने वाले अनेक साधु-साध्वी भी देखने को मिलें ।

रंगलाल की ऐसी अनेक बातें सुनकर मेरे मन में इससे उक्त मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की कुछ विशेष बातें जानने की भी जिज्ञासा बढ़ी क्योंकि मेरा उस सम्प्रदाय विषयक ज्ञान बहुत ही अल्प था और रंगलाल उक्त रूप में उस सम्प्रदाय की सारी बातें अच्छी तरह से जानने वाला मालूम पड़ा । वहीं कुछ बुद्धिमान था और मारवाड़, गुजरात, मालवा आदि कई स्थानों में रह चुका था जहाँ उसको कई प्रकार के श्रावक भाईयों का परिचय प्राप्त हुआ था । कुछ अखबार तथा पत्र-पत्रिकाएँ भी पढ़ता रहता था। गुजराती भाषा भी वह ठीक-ठीक समझता था। इस दृष्टि से मुझे लगा कि मेरी अपेक्षा वह कुछ अधिक जानने वाला है। पर वह स्वभाव का बड़ा तेजसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। कई दफा वह अपने साधुओं के साथ लड़ने लगता था, जिसे देखकर मुझे उससे कुछ संकोच भी हुआ करता था।

इस प्रकार कोई डेढ़ महिना हमारा और उसका साथ रहा पर उसकी बातों ने मेरे मन को अपने चालु जीवन क्रम में एक बड़ा क्षोभ उत्पन्न कर दिया और मेरे विचार किसी और ही रास्ते की ओर मुड़ने लगे। मुझे लगा कि इस समुदाय में रह कर मैं अपनी विद्या की भूख को नहीं मिटा सकता। मुझे अपना ज्ञान बढ़ाने को यहां कोई गुन्जाईश नहीं मालूम देती। मुझे बार-बार अपने गुरू यति देवीहंसजी का वह अन्तिम वाक्य याद आने लगा। जिसमें उन्होंने कहा था कि "बच्चा तू खूब विद्या पढ़ने का प्रयत्न करना और जहाँ विद्या पढ़ने का स्थान मिले वहां पर रहना विद्या पढ़ने ही से तेरा जन्म सफल होगा, इत्यादि।" मैंने ऐसी ही कुछ विद्या पढ़ने के लिए खाखी बाबा का साथ किया वहां कुछ न मिलने से फिर भटकते फिरते यह स्थानक-वासी साधु वेष धारण किया। पर यहाँ पर भी मेरी कुछ विशिष्ट विद्या सीखने की कोई आशा सफल नहीं हुई। पिछले ४-५ वर्षों में जो कुछ मैं यहाँ सीख पाया, जान सका उसने मेरी अंतर की जिज्ञासा को तृप्त करने का कोई मार्ग दिख नहीं रहा है। इस समुदाय की प्रथा और रूढ़ी के अनुसार मैं थोड़ा बहुत जैन सूत्रों का धीरे-धीरे अध्ययन बढ़ा सकता हूँ और ढाल, चौपाई, रास आदि पढ़-पढ़ कर लोगों को व्याख्यान सुनाता रहूँगा। साथ मे कुछ कथा कहानियाँ याद कर लोगो को सुनाते रहने से सुनने वालों का कुछ मनोरंजन भी कर सकूंगा, पर इससे इति-हास और भूगोल आदि की जो बातें मैं खासकर जानना चाहता हूँ उसके जानने पढने का यहाँ कोई संयोग ही नहीं दिखाई देता। यहां तो केवल तपस्या और शुष्क कठोर आचार का पालन ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है और उसके द्वारा मानने वाले भक्तजनों के वन्दन नमन आदि अवि-चार प्रदर्शित सन्मान की प्राप्ति देखकर ही जीवन को सफलता मान लेनी है। रतलाम के स्वल्प संसर्ग ने मेरे मन को अपने लक्ष्य से विचलित कर दिया। मेरे मन में अज्ञात भाव से ऐसा संस्कार जमने लगा कि क्यों न मैं मूर्तिपूजक साधु बनकर अपनी विद्या की भूख मिटाने का विचार करूँ ?

हम साधुओं का उज्जैन में चातुर्मास करने का विचार हो चुका था इसलिए खाचरोद आदि कुछ गांवों में घूमते फिरते चातुर्मास के कुछ दिन पहले जैन के उस लुणमण्डी वाले धर्म स्थानक में पहुँच गए इधर नन्दलालजी स्वामी भी अपने शिष्यों के साथ आगर आदि स्थानों में होते हुए वे भी उज्जैन के नयापुरा नामक स्थान के श्रावकों के आग्रह से वहां पर चातुर्मास के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ गए पर उज्जैन पहुँचने के पहले ही रास्ते में वह रंगलाल तो कुछ लड़-झगड़ कर भेष छोड़-कर चला गया।

उज्जैन का चातुर्मास और मेरे उस वेष का विसर्जन

चातुर्मास का प्रारम्भ होने पर तपस्वीजी ने ५० दिन के उपवास जैसी तपस्या स्वीकार की। उनकी ख्याती उसी रूप में विशेष थी। जहाँ कहीं वे चातुर्मास रहते वहां के श्रावक उनकी वैसी लम्बी तपस्या की आशा हमेशा रखते। पर इस बार उज्जैन के श्रावकों का वैसा उत्साह नहीं दिखाई दिया और उन्होंने वैसी तपस्या विषयक आमन्त्रण पत्रिकाएं भी नहीं छपवाई। उधर नयापुरा में भी नन्दलालजी के साथ वाले एक साधु ने कोई ४५ या ५० दिन के उपवास का पच्चकखाण ले लीया था इसलिए बाहर वाले श्रावकों का आवागमन भी बहुत जोरदार नहीं रहा। उनकी तपस्या का यही उद्देश्य रहता था कि तपस्या के निमित्त लोग उनके दर्शनार्थ अधिक आवें जावें।

यो तो ऐसी तपस्या करने वालों का और कोई ऊंचा उद्देश्य मेरे अनुभव में नहीं आया। जो साधु-साध्वी अथवा बहिनें ऐसी लंबी तपस्याएं करते रहते है। उन सब का लक्ष्य प्रायः प्रसिद्धी और जन सम्मान प्राप्त करने का ही दिखने में आया है। कर्मों की निर्जरा हो, ऐसा शुद्ध भाव रख कर लंबी तपस्या करने वाला शायद ही कोई व्यक्ति मालुम दें। ज्यों ज्यों मैं कुछ सोचने की शक्ति प्राप्त करता गया और मुझे कुछ अपने जीवन के लक्ष्य के बारे में भी कभी कोई विचार अंतर में उठने लगा त्यों त्यों मेरे मन में तपस्वीजी की ऐसी लंबी तपस्या के बारे में कोई विशेष श्रद्धा नहीं रहने लगी। पर उनका स्नेह भाव मुझ पर सबसे अधिक रहता था। वे मुझ से भविष्य में किसी विशेष प्रकार की योग्यता की आशा रखते थे। वे मुझे दो-तीन वर्ष में अपने समुदाय का पुज्य बनाना सोच रहे थे। इस प्रकार की कोई कोई बात वे अपने भक्त जनों के आगे किया भी करते थे। वारी में जब हमारा चातुर्मास था। और वहां पर जो साध्वियां आदि थीं तब ऐसी बात अक्सर निकला करती थी। बाद में जब चम्पालालजी के साथ विचरण हुआ और उनको मालवे की तरफ विचरने का तपस्वीजी ने आग्रह किया तब भी उनके मन में ऐसी ही कोई बात थी। वे सोचते थे कि गुरु रामरतनजी के शिष्यों में कोई अभी ऐसा संयोग उपस्थित नहीं हुआ। परन्तु हमारे इस समुदाय के ५-१० साधु और १०-१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साध्वियां है तब किशनलाल जैसे को उस पद के लिए तैयार करना चाहिये इत्यादि । परन्तु उनकी भावना के योग्य मुझ में कुछ भी नहीं था । ऐसा मेरा अंतर कहा करता था ।

बारी के चातुर्मास के बाद ही उक्त मास्टर तथा सन्यासिनी के समागम से मेरा मन कुछ और ही दिशा में गति करने लग गया था और वह धीरे धीरे उस दिशा में बढ़ने लग गया था । भुसावल में उक्त जैन नवयुवक के साथ सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध से लेकर जो बातें हुई उन ने भी मेरे मन की गति को कोई नया दिशा संकेत दिया । उसके परिणाम स्वरुप मैं अपने विद्या अध्ययन के बारे में किसी नये मार्ग की खोज में व्यग्र रहने लगा. रंगलाल के साथ भी बातों से मुझे उस मार्ग का आभास होने लगा ।

उज्जैन वाले उस धर्म स्थानक में जैसा कि पहले सूचित किया हुआ हैं कुछ पुस्तकों का पुराना संग्रह था एक बक्से में हस्तलिखित पोथियों के ५ - ७ वेस्टन थे । और एक दूसरे लकड़ी के बक्से में १०-२० छपी हुई पुस्तकें थी उन पुस्तकों को मैं धीरे धीरे देखने लगा । उसमें छपा हुआ एक बड़ा ग्रंथ मेरे देखने में आया जिसका नाम सूयगडांग सूत्र था । यों सूयगडांग सूत्र का प्रथम श्रुत स्कंध मैंने कंठस्थ कर रखा था और उसका पाठ भी मैं बराबर करता रहता था परंतु मैंने जिस हाथ की लिखी पुस्तक (पोथी) पर से वह सीखा था वह तो कुछ थोड़े से पन्नों की थी उसमें सूत्र के मूल पाठ के साथ भाषा का टब्बार्थ भी लिखा हुआ था यह जो छपी हुई बड़ी पुस्तक मैंने सर्व प्रथम देखी वह तो बहुत बड़ा ग्रंथ सा था । उसमें सूत्र के मूल पाठ के साथ संस्कृत भाषा में लिखी हुई एक दो बड़ी टीकाएं थीं और साथ में सूत्र का अर्थ भी भाषा में बहुत विस्तार के साथ दिया हुआ था । संस्कृत टीकाएं तो मेरी समझ के बाहर थी परन्तु उस भावार्थ को मैं खूब ध्यान से पढ़ता रहा उस पुस्तक के प्रारंभ में जो कुछ प्रस्तावना रुप में गुजराती भाषा में परन्तु देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ था उसको मैं ठीक ठीक पढ़ गया और उसमें यह बताया गया था कि इन संस्कृत टीकाओं का बनाने वाले कौन आचार्य थे ।

वैसी ही बड़ी दो तीन और छपी हुई पुस्तकें थी । जिनमें एक का नाम जैन तत्वादर्श और दूसरी बड़ी सी वैसी ही पुस्तक थी जिसका नाम तत्वनिर्णयप्रासाद था । ये दोनों पुस्तकें मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य आत्माराम जी उर्फ विजयानन्द सूरी की बनाई हुई थीं । पुस्तकें अच्छी बड़ी थी मेरी उनको पढ़ने की इच्छा हुई । प्रथम मैंने जैन तत्वादर्श को पढ़ना शुरु किया । इस प्रकार व्यवस्थित रुप से जैन धर्म के स्वरुप को बताने वाली कोई पुस्तक मैंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब तक नहीं पढ़ी थी उसके अन्त में भगवान महावीर से लेकर उन आचार्यों का इतिहास लिखा गया था जिन आचार्यों की परम्परा में पुस्तक लिखने वाले स्वयं भी एक आचार्य हुए । ये आचार्य मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के तपागच्छ नामक शाखा के अनुयायी थे। मेरी रूचि इतिहास के जानने की हो रही था। इसलिए जैन धर्म के इन पूर्वाचार्यों का इतिहास पढ़कर मुझे कुछ इतिहास के प्रकाश का आभास होने लगा । मैं कई दफे इन बातों को पढ़ता रहा। जैन धर्म की पूर्व परम्परा का थोड़ा सा भी ज्ञान मुझे इस पुस्तक के पढ़ने से होने लगा। इसके बाद दूसरी उन आचार्य की बड़ी पुस्तक जो तत्त्व निर्णय प्रासाद नामक थी, उसको पढ़ना शुरू किया लेकिन इस ग्रन्थ में अनेक विषयो का आलेखन था जो उस समय मेरी ज्ञान की सीमा के बाहर था । उसके अन्तर्गत कुछ जैन धर्म से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन शिला लेखों का भी वर्णन दिया गया था। मथुरा में मिली हुई कुछ दो हजार वर्ष जितनी पुरानी जैनमूर्तियो के शिला लेखों के बारे में भी कई बातें लिखी हुई थी जिन्हें पढ़कर मैं विस्मीत सा हुआ । हमारे उस सम्प्रदाय को मान्यता के अनुसार तो जैन मन्दिर और मूर्तियों का बनना, भगवान महावीर के निर्वाण से कई ८००–९०० वर्ष पीछे शुरू हुआ । इस मूर्तिपूजा को चलाने वाले पाखंडी आचार्य थे उन्होंने अपनी पेट–पूजा की दृष्टि से मूर्तिपूजा का पाखण्ड चलाया इत्यादि। इसलिए मूर्तिपूजा स्थानकवासी सम्प्रदाय में मान्य नहीं है। उस विषय की छोटी–बड़ी कई पुस्तकें जो लिखी गई, मुझे उनका तो विशेष ज्ञान नहीं था पर कई बार मूर्तिपूजा के बारे में हमारे साधु लोग जो चर्चाए करते रहते थे, उसका कुछ थोड़ा सा मुझे परिज्ञान था । उस विषय की समकोतसार नाम की एक पुस्तक स्थानकवासी स्वामी जेठमल जी ने बनाई थी वह मैंने जरूर पढ़ी थी क्योंकि मेरी रूचि जिन मन्दिर और जिन मूर्ति के विषय में जानने की रहा करती थी पूर्वावस्था में मैं जैन यतिजनों के संसग में रहा था इसलिए मेरे मन में जैन मन्दिर तथा जिन मूर्ति के संस्कार दबे हुए थे इसका विशेष चर्चा का तो यहाँ कोई खास प्रसंग नहीं है ।

मुझे उक्त तत्व निर्णय प्रासाद ग्रन्थ में २००० वर्ष पुराने जैन मूर्तियों के लेखों के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त कर मेरी उक्त विषयक मान्यता में सदेहात्मक विचार उत्पन्न होने लगे । मैं सोचने लगा कि इस प्रकार जब २००० वर्ष से भी अधिक पुरानी जैन मूर्तियाँ मिलती है और उसमें कई बड़े पुराने आचार्यों के नाम मिलते हैं जो कल्पसूत्र की थेरावली के नामों से सबंध रखते हैं। यह जानकर मेरी जैन मूर्तियों की प्राचीनता के विषय में भी जो मान्यता थी उसमें परिवर्तन होने लगा ।

इसी प्रकार उन आचार्य की बनाई हुई एक अन्य पुस्तक भी उन पुस्तकों में मेरे देखने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आयी जिसका नाम अज्ञानतिमिरभास्कर था। इस ग्रन्थ में खासकर जैन धर्म के बारे में ब्राह्मणों के वेद आदि ग्रन्थों में, जो आक्षेपात्मक बातें हैं, उनका उत्तर उसी तरह दिया गया था। स्वामी दयानन्दजी ने भी सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक में जो जैन मत के आक्षेप रूप में लीखा हुआ था, उसका भी खण्डन आदि किया गया था।

इस प्रकार उन आचार्य आत्मारामजी के, इन ग्रन्थों को पढ़कर मेरे मन में उनकी विद्वत्ता और गहरे ज्ञान का बहुत प्रभाव पड़ने लगा उन दो महिनों में उनके ग्रन्थों का मैंने कई बार पढ़ा। मेरे मन में होने लगा कि ऐसे ही किसी विद्वान की सेवामें रहकर मुझे अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिये।

उक्त पुस्तकों में उनके जीवन चरित्र के बारे में भी जो कुछ बातें लिखी हुई थीं उनको भी मैंने ठीक ढग से पढ़ी। उससे मालूम हुआ कि वे भी पजाब में पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय दीक्षित हुए थे और बाद में शास्त्रों के अध्ययन से उनका विचार परिवर्तन हुआ। तदनुसार वे मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। उनके गुरू बुट्टेरायजी थे। जो भी पहले स्थानकवासी साधु थे और बाद में मूर्तिपूजक साधु का वेष धारण कर संवेगी साधु बने। आत्मारामजी ता अठारह साधुओं के साथ वेष परिवर्तन कर संवेगी साधु बने और फिर इस सम्प्रदाय में अपनी विद्वत्ता के कारण वे बहुत बड़े आचार्य बने। उनकी इस प्रकार की जीवन कथा ने मेरे मन को खूब आन्दोलित कर दिया। अगर मुझे भी किसी प्रकार का अच्छा विद्या अध्ययन करना है ता बस हा किसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। मैं इन विचारों के कारण मन में आकुल-व्याकुल रहने लगा।

तपस्वीजी को इस बार की तपस्या में पिछले दिनों में शिथलता का अनुभव होने लगा। पहले की तरह उनका व्याख्यान आदि में उत्साह नहीं दिखाई देने लगा। कमजोरी अधिक महसूस होने के कारण पिछले कुछ १५-२० दिनों में वे दही के मठ्ठे का वे उपयोग करने लगे। हम उन साधुओं के सिवाय अन्य किसी को ये बात ज्ञात नहीं होने दो। अचलदासजी और मुन्नालालजी श्रावकों के घर से दही बहर लाते थे। और उसे अच्छी तरह थोड़े से पानी में घोल कर तपस्वीजी को पिला दिया जाता था। यूँ उनका शरीर ठींगना और अच्छा गठीला था तो भी उस पर कमजोरी का प्रभाव दिखाई पड़ रहा था। व्याख्यान में भी उनके पास मुन्नालालजी बैठा करते और वे कुछ ढ़ाल, चौपाई आदि सुनाया करते।

मैं थानक की ऊपर की मंजिल में बैठा रहता और कुछ किशोर भाई-बहन मेरे पास आकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठ जाते और मेरे साथ कई प्रकार की सामान्य बातें किया करते। पहले मैं जिस तरह उनकी बातों में रस लेता था वह रस मेरा अब कम होता जा रहा था। मेरी तरफ वैसे भाई-बहनों का कुछ अधिक आकर्षण रहता था। परन्तु अब मुझे वह आकर्षण भाव एक प्रकार का बन्धन-स्वरूप लगने लगा। कब और कैसे इस बन्धन की ममता से मैं मुक्त बनूं इसी विचार को दिन रात मन ही मन सोचा करता और किसी को मेरे मन का जरा भी आभास न होने पावे इसका रास्ता मैं खोजने लगा। तपस्वीजी की ममता मुझ पर सबसे अधिक थी और मैं इनको गुप-चुप छोड़कर चला जाऊँ तो इनके मन को कैसा आघात पहुँचेगा, इसकी कल्पना मुझे व्यग्र बनाता रहती थी। परन्तु एक न एक दिन मुझे अपने जीवन क्रम को अब निश्चित रूप से बदलना है और जब कभी मैं ऐसा करूँगा, तब तपस्वीजी को आघात होगा ही। ऐसी बातें मैं रात को बिछौने में पड़ा-पड़ा कई दिनों तक सोचता रहा।

मैं शौच के लिए हमेशा क्षिप्रा नदी के तट की तरफ जाता रहता था कभी अन्य साधुओं के साथ और कभी-कभी मैं अकेला ही। क्षिप्रा नदी का जो रेल्वे का पुल था उसकी बाईं तरफ २००-४०० कदम के फासले पर एक खासी ऊँची पत्थर की चट्टान थी उस चट्टान पर मैं कई दफा जाकर बैठा करता और नदी का प्रवाह तथा सामने के खेतों वगैरह के दृश्यों को देखने से मेरा मन प्रसन्न रहता था। वहाँ पर बैठे२ एक दिन सहसा मेरे मन में स्वीकृत बन्धन से मुक्ति पाने का अस्पष्ट खयाल हो आया। उस चट्टान से कुछ ही दूरी पर रेल्वे का लम्बा पुल था जिस पर बगल में मनुष्यों के चलने के लिए पटरी बनी हुई थी। उस पटरी पर से ही लोग प्रायः नदी को पार करते रहते थे। उसकी दूसरी तरफ दाहिनी ओर कुछ दूरी पर वह मठ था जिसमें मैं किसन भैरव के रूप में ७-८ वर्ष पहले २-३ महिने रहा था। उसकी वह स्मृति मेरे मन में हो आई कि किस तरह एक रात को मैं गुपचुप उस मठ से चल निकला और खाखी बाबा के भेष स्वरूप जो डंड, कमण्डल, चिमटा आदि चीजें मेरे पास थी उनको क्षिप्रा नदी में बहाकर नये रास्ते पर चल पड़ा। ठीक वैसा ही अब यह एक और प्रसंग मेरे लिए उपस्थित होता हुआ मुझे दृष्टि गोचर होने लगा। यह कल्पना कुछ आघात जनक भी थी और जीवन के किसी नये प्रवाह में कूद पड़ने को प्रेरणादायक भी था।

तपस्वीजी की तपस्या का पारणा शांति पूर्वक हो गया। हमेशा की तरह अधिक लोगों का कोई आवागमन नहीं रहा। १०-२० दिनों में वे ठीक स्वस्थ हो गये। मेरा उद्विघ्न मन मेरे धैर्य को कुटा रहा था और मैं उस दिन की शिघ्रता से प्रतिक्षा करने लगा। मेरे मन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया कि यदि रंगलाल होता तो उससे मैं किसी स्थान विशेष और किसी मूर्तिपूजक साधु विशेष का परिचय प्राप्त कर लेता और तदनुसार मैं उस स्थान तथा व्यक्ति की खोज में निकल पड़ता। परन्तु अब वैसी कुछ जानकारी प्राप्त होने की सम्भावना न समझ कर, स्वयं ही भटककर, कहीं कोई लक्षभूत स्थान की खोज में, अज्ञात रूप से निकल पड़ने के लिए मैंने मन को तैयार किया।

किसी से पूछने पर मुझे मालूम हुआ कि पास ही जो रेल्वे का स्टेशन है वहाँ से शाम के समय कुछ अंधेरा होते२ ही एक गाड़ी फतेहाबाद स्टेशन की तरफ जाती है। मैंने सोचा कि किसी तरह गुपचुप इस गाड़ी में बैठकर जीवन का नया रास्ता पकड़ना ठीक होगा।

वे चौमासे के दिन थे दो दिन काफी पानी की झड़ियाँ आती रही। रात को भी रह-रह कर पानी बरसता रहा। दोपहर के ३–४ बजे बाद वर्षा कुछ बन्द हुई, तब अचलदासजी और मुन्नालालजी नजदीक के श्रावकों के वहाँ से आहार पानी बहर लाये। सबके साथ बैठकर मैंने भी आहार पानी किया। सध्या होने में कोई घण्टा भर की देरी थी आकाश में बादल घिर रहे थे मैंने सोचा कि रात में फिर जोरों से वर्षा होगी। तब मैंने तपस्वीजी से कहा कि दो-तीन दिन हुए मैं बाहर शौच नहीं गया इसलिए मैं शौच हो आता हूँ। वर्षा आने वाली दिख रही है इसलिए मैं जल्दी ही किसी वैसी ही नजदीक की भूमि में शौच से निवृत्त हो आना चाहता हूँ। मेरी शौच जाने की आदत हमेशा कहीं बाहर अच्छी जगह में जाने की रही है अन्य साधुओं की तरह मैं किसी ऐसी वैसी जगह में शौच निवृत्ति नहीं कर सकता था न कभी रात विरात ही मैं शौच से निवृत्त होता था। ऐसी अनुकुल जगह न मिलती तो मैं दो-दो तीन-तीन दिन तक शौच नहीं जाता था। कई साधु समय बेसमय मलत्याग की क्रिया अपने पास वाले कोई ऐसे पात्र में कर उसे स्थानक के बाहर रास्ते आदि में विसर्जित करते देखे गए थे। मुझे इसकी बड़ी घृणा रहती थी मैंने कभी उस वेष में ऐसी मल विसर्जन क्रिया नहीं की। कुछ शुभ प्रकृति के उदय से मेरा शारीरिक संगठन ठीक बना हुआ होने से मुझे इस विषय में कोई अनियमितता का अथवा कष्ट का खास अनुभव नहीं हुआ। आज इस निवासी वर्ष की उम्र में भी मेरी यह शारीरिक प्रक्रिया नियमित रही है। किसी बिमारी विशेष के कारण कभी अनियमितता का अनुभव हो वह अलग बात है परन्तु स्वस्थ दशा में वैसा अनुभव नहीं हुआ। तपस्वीजी मेरी इस प्रकृति को जानते थे इसलिए उन्होंने मुझे कहा कि वर्षा का जोर दिखाई देता है इसलिए जल्दी ही निपट आना। मैंने तहत्ती कह कर उसका उत्तर दिया और शीघ्रता से अन्दर जाकर एक कागज जो कुछ दो-तीन दिन पहले मैंने लिख रखा था उसको अपने आसन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के तकीये के नीचे इस तरह रख दिया कि सुबह होने पर वह साधुओं के हाथ में आजाय । इस कागज में तपस्वी जी को उद्दीष्ट कर निम्न आशय की दो-चार पक्तियां मैंने लिख रखी थी । उसका आशय कुछ इस प्रकार था "बहुत दिनों से मेरा मन उद्विघ्न रहता है मुझे इस साधु जीवन में अब आनन्द नहीं आरहा है । मेरी इच्छा शुरू से ही कुछ विशिष्ट प्रकार के विद्याध्ययन करने की रही है । इस छोटे से सम्प्रदाय में मेरी विद्या पढ़ने की वह लालसा पूरी हो सके ऐसा मुझे नहीं लगता । अतः मैं कहीं ऐसे समुदाय में जाना चाहता हूँ जहाँ मेरा पढ़ने की भूख मिट सके । आपका स्नेह मुझ पर सदा से बहुत अधिक रहा है मैंने भी आपके मन को कोई दुःख हो ऐसा व्यवहार कभी नहीं किया। मैं आपकी आज्ञानुसार सदा अपना साधु धर्म पालता रहा । पर मैं अपने इस उद्विघ्न मन को किसी तरह शांत रखने में असमर्थ होने से अब कोई किसी अन्य रास्ते जाना चाहता हूँ । मेरे जाने से आपको बहुत आघात लगेगा ऐसा मैं अच्छी तरह जानता हूँ। पर मैं लाचार हूँ अतः आप मेरी इस कृतघ्नता को क्षमा करें और मेरे लिए अब आप और किसी प्रकार का प्रयत्न न करें ।"

कुछ थोड़ा सा पानी लेकर एक पात्र झोली में रखा और भरे हुए हृदय से उस स्थानक से बाहर निकला कुछ गलियों में होता हुआ मैं क्षिप्रा नदी को उस चट्टान को ओर चला। रास्ता कुछ लम्बा था वहाँ पहुँचते-पहुँचते बादल खूब घिर आये थे और थोड़ी-थोड़ी बून्दे भी गिरने लगी । मैं नदी के पुल के टुकड़े वाले थम्बे के नीचे जाकर रूका। देखा तो क्षिप्रा नदी में बड़े जोरों से पानी का प्रवाह बढ़ रहा था उस खम्बे से कोई ८-१० फुट की दूरी पर पानी हिलोले ले रहा था । इस दृश्य को देखने के लिए मेरा मन स्थंभीत सा हो गया परन्तु मुझे जिस गाड़ी में बैठकर रवाना होना था वह नदी के पुल के पास वाली केबीन की तरफ आने ही वाली थी इस केबीन से नदी के पुल पर छोटा-बड़ी दोनों लाईनें एक साथ चलने वाला होने से गाड़ी वहाँ ४-५ मिनिट ठहरा करती थी वहीं से गाड़ी में चढने का मैंने सोच रखा था इसलिए बड़ी शीघ्रता से मैंने अपने रजोहरण को खोला और डांडी निकाल ली फिर उस रजोहरण का पात्र में रखा तथा उसके साथ मुँह पत्ति भी खोलकर उसमें रख दी फिर पात्र को झोली वाले कपड़े में ठीक बाँधकर जिस तरह सात-आठ वर्ष पहले उस खाखी बाबा के भेष वाले डंड, कमण्डल, चिमटा आदि उपकरणों को इस नदी में बहा दिया था। उसी तरह इस नदी के बहते हुए जल प्रवाह में उसे बहादिया। कई वर्षों तक जिस रजोहरण को मैंने दिन-रात अपने साथ लिए फिरता था। उसको और जो मुँह पत्ती मैंने मुँह पर दिन-रात बाँध रखी थी उसको भी मूँह से अलग करते हुए मेरे मन में कई विचित्र भाव उत्पन्न हुए । परन्तु मनुष्य का मन ऐसा विचित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि प्रसंग विशेष प्राप्त होने पर प्राणों से भी अधिक प्रिय, जीवन भर की अत्यन्त प्रिय वस्तु को भी क्षण भर में त्याग देता हैं। और मानो उसके साथ जीवन का कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं था ऐसी अनूभूति करने लग जाता है। इसी प्रकार क्षण भर में उन साधु वेष बताने वाले उपकरणों को मैंने निश्चेष्ट मन में नदी से बहा दिया और मेरे मन में हुआ कि अब मैं अपने इस जीवन को ऐसे ही किसी अज्ञात प्रवाह में बहा देने के लिए निकल रहा हूँ। न जाने यह जीवन का प्रपंचमय पिंड कब और कहां जाकर निकलेगा? ऐसा सोचता हुआ मैं अपनी जो चद्दर थी उसको बीच से फाड़कर आधी तो सिर पर लपेट ली और आधी शरीर पर लपेट ली जो चोल पट्टा पहने हुए था उसको किसानों की तरह धोतीनुमा बनाकर उसे शरीर के नीचले भाग में लपेट लिया।

मेरे पास उस समय केवल ये ही दो पुराने मेले वस्त्र थे और इस प्रकार से मैं सर्वथा निष्किंचन और परिग्रह रहित हो गया उस समय में पाणि पात्र दिगम्बर तो नहीं बना पर दो साटक पाला आजीवक भीक्षु अवश्य बन गया था। मैं जल्दी पुल के ऊपर सिरे पर चढ़ गया और वहाँ से २५–३० कदम के फासले पर जो गाड़ी आकर खड़ी हुई थी उसके एक डिब्बे में जाकर घुस गया। वर्षा जोरों से बरसनी शुरू हो गई थी और मेरे वे कपड़े पानी से तर-बोर हो चुके थे। गाड़ी के डिब्बे में कोई ५–७ ही मनुष्य इधर–उधर बैठे हुए थे और वे भी मेरी ही तरह पानी में तरबतर थे गाड़ी में घुसते ही इन्जीन ने सीटी देदी और गाड़ी धीरे-धीरे सरकने लगी क्योंकि पुल पास ही था और उस पर दोनों लाइनें एक साथ बिछी हुई थी इसलिए गाड़ी आस्ते–आस्ते चलने लगी। मैंने खिड़की से नदी के जोर से बहते हुए जल प्रवाह को आखिरी बार ध्यान से देखा गाड़ी ने धीमी आवाज की घड़–घड़ाहट के साथ पुल को पार किया।

इस क्षण से मैंने अपने जीवन के नये मार्ग में प्रवास शुरू किया।

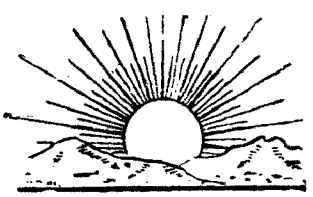

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं हूं भूला-भूत

भूला फिरा मैं सारा जीवन,
कहीं न मुझे कोई मार्ग मिला ।
रहा भटकता यों हीं निश दिन,
न कहीं देखी कोई सिद्धि शिला ।

नजर न आया कहीं कोई सिद्धि वाला
न कहीं देखा कोई जीवन मुक्त ।
न मिला कोई भव निर्मोही,
न पाया कोई बंधन वियुक्त ।।

यों जीवन को मृग तृष्णा में,
भूला फिरा मैं कुछ पाने को ।
पर हाथ न आया कुछ मुझको,
वृथा ही ढूंढा किसी अनजाने को ।।

कोई न मिली सच्ची श्रद्धा देवी,
न मिला कहीं कोई पक्का अवधूत ।
जीवन के अब विलय समय में,
मैं बन रहूँगा भूला - भूत ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org